आर्य विद्या परिषद्, दिल्ली

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
15, हनुमान रोड, नई दिल्ली

ओ३म्

शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा

सुरेन्द्र कुमार रैली

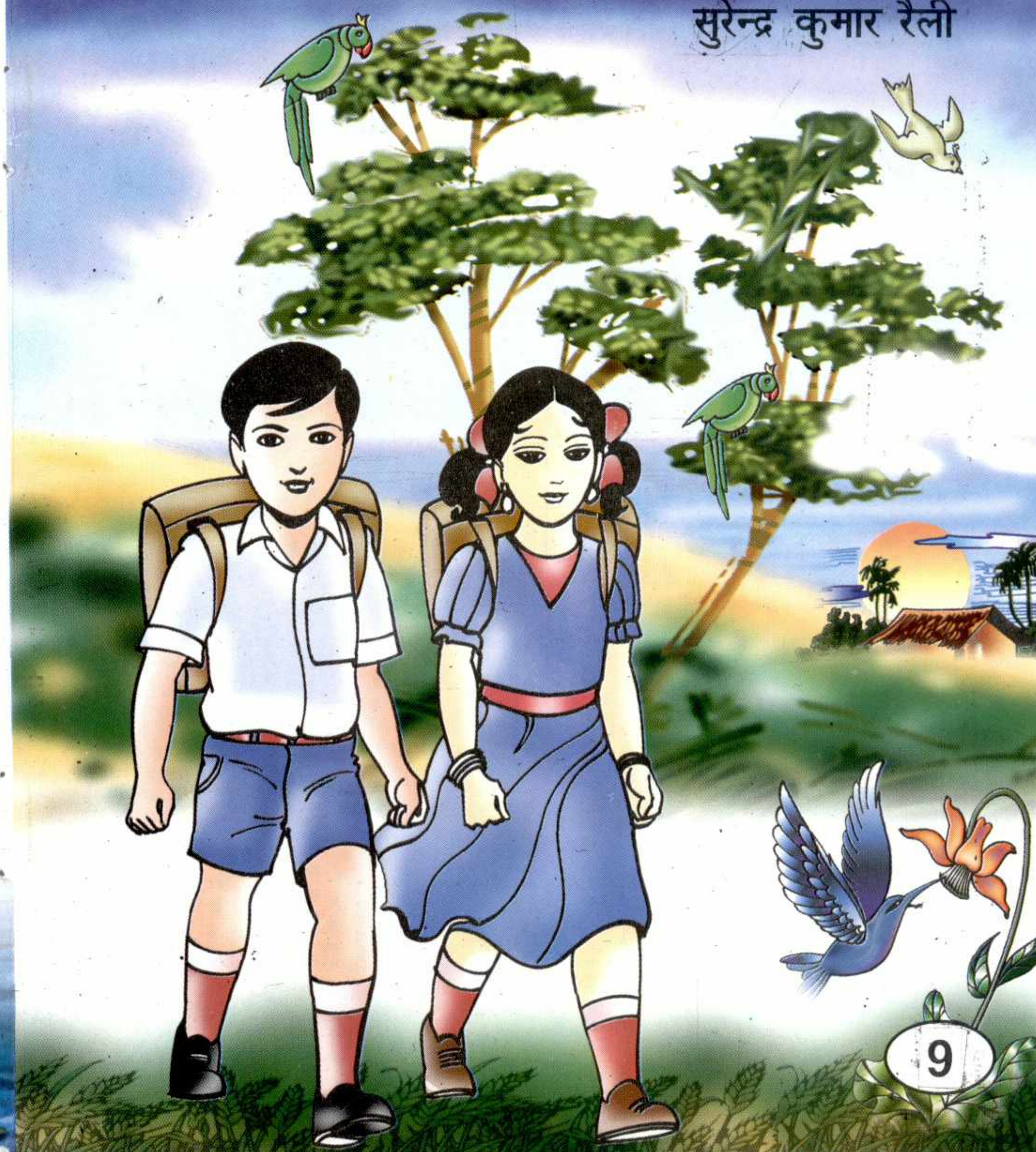

9

नयी पीढ़ी को सुसंस्कृत करने का उपक्रम

बालक और युवा ही भारत के भावी कर्णधार और निर्माता होंगे। लेकिन आज हमारी इस अमूल्य सम्पत्ति को निर्ममतापूर्वक विनष्ट किया जा रहा है। अपने इस मूलधन का विनाश हम खुली आँखों से देख रहे हैं। अमेरिकी वैश्वीकरण का घातक आक्रमण हमारे बालकों और युवाओं पर ही लगातार हो रहा है।

टी.वी., मोबाइल, कम्प्यूटर, इन्टरनेट ऐसे दुर्दमनीय साधन हैं जिनके द्वारा नई पीढ़ी के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान हो सकता था, परन्तु ये साधन तो बन्दर के हाथ में पलीते की तरह पड़ गये हैं और इनके द्वारा नयी पीढ़ी को अपसंस्कृति के जाल में बड़ी सुगमता से फँसाया जा रहा है।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा और उससे संलग्न आर्य विद्या/परिषद् ने नयी पीढ़ी को सुसंस्कृत, संयमी, संवेदनशील, उत्तरदायित्वों को सहर्ष स्वीकार करने वाले नागरिक बनाने के लिए एक स्तुत्य उपक्रम हाथ में लिया है। शिष्टाचार और नैतिक शिक्षा का प्रचार और प्रसार ही उनका लक्ष्य है। उन्होंने इस विषय को लक्ष्य कर 12 भागों (कक्षा 1 से 12 तक) में व्यावहारिक और प्रभावशाली साहित्य का निर्माण किया है। इन पुस्तकों में छात्रों के शिष्टाचार और नैतिक विकास को दृष्टि में रखकर सामग्री प्रस्तुत की गयी है। छात्रों में उत्तम संस्कारों और आस्तिकता पर बल दिया गया है। इन पुस्तकों में संध्या और यज्ञ के साथ सदाचार की शिक्षा देने वाली सामग्री दी गयी है।

इन 12 पुस्तकों के लेखक व आर्य विद्या परिषद् के प्रस्तोता, श्री सुरेन्द्र कुमार रैली के धर्म, समाज और देश के प्रति सात्विक चिन्तन का ही मधुरफल है। लेखक ने प्रारंभ में ही बालकों को 12 अनिवार्य और आवश्यक बातें समझाई हैं। बालक के वैयक्तिक जीवन के साथ घर, परिवार, समाज, देश और धर्म का ज्ञान प्रश्नोत्तर शैली में कराया है। नित्यप्रति के व्यावहारिक ज्ञान से बालकों को अवगत कराया है। पुस्तक में ओ३म्, ईश्वर, वेद, वैदिक संध्या, प्रार्थना, गायत्री मन्त्र, वर्ण व्यवस्था, सत्यार्थ प्रकाश, कर्मफल, अग्निहोत्र, माँस भक्षण निषेध, त्रैतवाद, गोकरुणानिधि, मद्यपान निषेध, भारतीय दर्शन आदि विषय चर्चित हैं। दूसरे भाग में महापुरुषों के प्रेरणाप्रद चरित्र पुस्तकों की उपयोगिता को सिद्ध करते हैं। माता–पिता–गुरु की सेवा, अनुशासन, संयम, नमस्ते, स्वच्छता, सत्संगति, आसन प्राणायाम, एकता, श्रम, निष्ठा, शिष्टाचार, मित्रता, उत्तरदायित्व, सन्तोष, कर्तव्य परायणता, ब्रह्मचर्य, साहस, भ्रातृभाव इत्यादि सद्गुणों की शिक्षा, छोटी–छोटी कहानियों के माध्यम से, इस माला में अच्छी तरह चमक रही है। आर्य, आर्यावर्त, आर्य–समाज, गुरूकुल, डी.ए.वी., संस्कृत भाषा, इत्यादि विषयों का समावेश लेखक की सूझबूझ की दाद देता है। इन पुस्तकों का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ। पुस्तकों की भाषा प्रांजल, शैली सुबोध और हृदयग्राही है। छपाई, साज–सज्जा नयनाभिराम हैं। मूल्य अतिअल्प है। यह पुस्तकें घर–घर पहुँचने योग्य हैं।

- कै. देवरत्न आर्य

प्रधान, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

मुद्रक : एस.एन. प्रिंटर्स, 1/11807, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

प्रार्थना मंत्र

ओं य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासतें
प्रशिषं यस्य देवाः यस्यछायाऽमृतं
मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

यजु०२५।१३।

अर्थ

हे प्रभो ! आप ही आत्मिक व शारीरिक बल देने वाले हो।
भगवान्! समस्त विद्वान् आपकी उपासना व आपकी ही आज्ञा का पालन करते हैं।
आपकी शरण अमृत है और आपकी उपेक्षा मृत्यु।
प्रभो! हम सुखस्वरूप आपकी स्तुति करते हैं।

29

जय घोष

जो बोले सो अभय–**वैदिक धर्म की जय**

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम चंद्र की–**जय**

योगिराज श्री कृष्ण चंद्र की–**जय**

गुरुवर दंडी विरजानंद महाराज की–**जय**

ऋषिवर स्वामी दयानन्द की–**जय**

धर्म पर मर मिटने वालों की–**जय**

देश पर बलिदान होने वालों की–**जय**

भारत माता की–**जय**

गौ माता का–**पालन हो**

आर्यसमाज–**अमर रहे**

वेद की ज्योति–**जलती रहे**

ओ३म् का झंडा–**ऊँचा रहे**

हमारा संकल्प–**कृण्वंतो विश्वमार्यम्**

वैदिक ध्वनि–**ओ३म्**

सबको वैदिक अभिवादन–**नमस्ते जी।**

★

शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा

(भाग-9)

सुरेन्द्र कुमार रैली

एम.ए., एलएल.बी

प्रेरक व शिक्षाविद्

प्रस्तोता, आर्य विद्या परिषद्, दिल्ली

पहला संस्करण	–	2005
द्वितीय संस्करण	–	2005
तृतीय संस्करण	–	2006
आठवां संस्करण	–	2011

मूल्य : ₹ 35.00

आर्य विद्या परिषद्, दिल्ली

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

15 हनुमान रोड, नई दिल्ली-110001

विषय सूची

1.	भूमिका	3
2.	शिक्षकों से	5
3.	काहे को दुनिया बनाई	6
4.	त्रेतवाद का सिद्धांत	11
5.	योग और उसके अंग	13
6.	जीव स्वतन्त्र सत्ता है	26
7.	आर्यसमाज क्या है? और क्या करता है?	31
8.	जीवन का उद्देश्य	38
9.	रामप्रसाद बिस्मिल	43
10.	महाराणा प्रताप	46
11.	स्वाध्याय	52
12.	आत्मचिंतन	54
13.	हमारा खान-पान	55
14.	यज्ञ करने की विधि और इसके लाभ	59
15.	अथ स्वतिवाचनम्	66
16.	आर्योद्देश्य रत्नमाला	77
17.	वैदिक प्रश्नोत्तरी	81
18.	बोध कथा	85
19.	गोकरुणानिधि	86
20.	मद्यपान निषेध	98
21.	महत्वपूर्ण जानकारियाँ	101
22.	महान् गुण : शिष्टाचार	105
23.	महान् गुण : आज्ञापालन	107
24.	महान् गुण : भूल स्वीकार करना	109
25.	महान् गुण : अपनापन	112
26.	महान् गुण : आशावादी	115
27.	आर्यवीर दल	120
28.	भजन	124
29.	जयघोष	128

आर्यसमाज के नियम

1. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

2. ईश्वर सच्चिदानंदस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनंत, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वांतर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

3. वेद सब सत्यविद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है– अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

7. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

8. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट नहीं रहना चाहिए, किंतु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें।

अमृत बेला

बेला अमृत गया, आलसी सो रहा बन अभागा।

साथी सारे जगे तू न जागा।।

झोलियाँ भर रहे भाग्य वाले, लाखों पतितों ने जीवन सँभाले।

रंक राजे बने, भक्ति रस में सने, कष्ट भागा।। साथी¨

कर्म उत्तम थे नर तन जो पाया, आलसी बनके हीरा लुटाया

उलटी हो गई मति करली अपनी क्षति, बन अभागा।। साथी¨

धर्म वेदों का न देखा भाला, बेला अमृत गया न सँभाला

सौदा घाटे का कर, हाथ माथे पै धर, रोने लागा।। साथी¨

'देश' तूने न अब भी विचारा, सिर से ऋषियों का ऋण न उतारा।

हंस का रूप था, गदला पानी पिया, बन के कागा।। साथी¨

भूमिका

शिक्षा से ही मानव जीवन का विकास होता है और इसके द्वारा मनुष्य के शरीर, हृदय तथा मस्तिष्क का विकास होता है। विद्यालयों में विभिन्न विषयों का पठन-पाठन विद्यार्थियों को अपने जीवन में सही दिशा प्राप्त करने में सहायक होता है, परन्तु उसका आत्मिक विकास, नैतिक शिक्षा के द्वारा ही संभव है, और इसी से विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए मानवीय मूल्यों की शिक्षा मिलती है। आर्यसमाज का सदैव प्रयास रहा है कि इन मानव मूल्यों से विद्यार्थियों को प्रारम्भ में ही अवगत करा दिया जाये। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्बद्ध आर्य विद्या परिषद्, दिल्ली ने शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा की पुस्तकें बच्चों को उपलब्ध कराई हैं जिनके द्वारा उनमें अच्छे संस्कार और ईश्वर में विश्वास पैदा हो, तथा संध्या-यज्ञ आदि के साथ-साथ महापुरुषों के जीवन-चरित्र, उनकी शिक्षाएँ और सदाचार की शिक्षा देने वाली कहानियां भी सम्मिलित की गई हैं।

इन पुस्तकों में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) के वर्ष 2000 के पाठ्यक्रम को भी ध्यान में रखा है जिसमें निर्देश दिया गया है कि बच्चों में सुरुचिपूर्ण संवेदनशीलता, स्वस्थ जीवन शैली, सकारात्मक सामाजिक चेतना, परिश्रम के प्रति आदर व नैतिक मूल्यों में आस्था का समावेश होना चाहिए ताकि वह दूसरों के

विचारों को बड़ी नम्रता से समझते हुआ सद्भाव एवं विवेक से अपनी कथनी और करनी में उन्हें लाएं।

हमारा प्रयास है कि हम विद्यार्थियों में सत्य, सद्भाव, सहयोग, ईमानदारी और परिश्रम करने जैसे अनेक गुणों का उनके जीवन में समावेश कर सकें।

इन 12 पुस्तकों के लेखन में जिन-जिन महानुभावों से प्रत्यक्ष रूप से अथवा उनके लेखों, कहानियों, गीतों व भजनों आदि के माध्यम से परोक्ष रूप से सहयोग मिला है, विशेष रूप से डा० गंगा प्रसाद जी, डा० महेश वेदालंकार जी, डा० रघुवीर वेदालंकार जी, डा० कमल किशोर गोयनका जी, डा० सत्यभूषण वेदालंकार जी, श्री धर्मपाल शास्त्री जी एवं श्री यशपाल शास्त्री जी, मैं उन सबके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि विद्यार्थी, अध्यापकवृंद और अन्य लोग इस पुस्तक को उपयोगी पायेंगे और विद्यार्थियों को सुसंस्कृत बनाकर राष्ट्रनिर्माण की सतत् पुण्यप्रक्रिया में सहयोगी होंगे।

सुरेन्द्र कुमार रैली

28

भजन

अटल प्रीति

तुम हो प्रभु चाँद, मैं हूँ चकोरा।
तुम हो कमल फूल, मैं रस का भौंरा।।१।। तुम हो...
ज्योति तुम्हारी का हूँ मैं पतंगा।
तुम आनंद हो, मैं वन का भौंरा।।२।। तुम हो...
जैसे है चुंबक की लोहे से प्रीति ।
मुझे खींच लेवे प्रभु प्रेम तेरा ।।३।। तुम हो...
पानी बिना जैसे हो मीन व्याकुल।
इसी भाँति तड़पाए तेरा बिछोड़ा ।।४।। तुम हो...
तेरे प्रेम जाल का मैं प्यासा हूँ प्यारे ।
करो प्रेम वर्षा हरो ताम मेरा ।।५।। तुम हो...

आर्य वीर गान

जो दुःखियों की सेवा में तन मन लगाए।
जो बरबाद उजड़े घरों को बसाए।
जो औरों को सुख देके खुद दुःख उठाए।
समझ लो वही आर्यवीर हो तुम ।।१।।
जो अन्याय के आगे झुकना न जाने ।
जो तूफान आँधी में रुकना न जाने ।
मुसीबत से डर कर के छिपना न जाने ।
समझ लो वही आर्यवीर हो तुम ।।२।।
जो मृत्यु का भय अपने मन में न लाए।
धधकती हुई ज्वाला में कूद जाए।
चकित कर दे जग को वह करके दिखाए।
समझ लो वही आर्यवीर हो तुम ।।३।।
उसे करके छोड़े जो दिल में ठनी हो।
निडर हो इरादे का धुन का धनी हों
धर्म रक्षा में जिसकी छाती तनी हो।
समझ लो वही आर्यवीर हो तुम ।।४।।
जो मैदान में लाजपत बन के निकले।
भगतसिंह सुखदेव दत्त बन के निकले।
जो शेरों पे चढ़ के भरत बनके निकले।
समझ लो वही आर्यवीर हो तुम।।५।।
जो ब्रह्मचर्य से अपना बल थाम रखे।
जो पुरुषार्थ परमार्थ से काम रखे।
जो रोशन दयानन्द का नाम रखें
समझ लो वही आर्यवीर हो तुम ।।६।।

शिक्षकों से

शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा की इस पुस्तक का उद्देश्य बच्चों में सहजभाव से अच्छे संस्कार पैदा करना है। उनमें सदाचार के प्रति निष्ठा, महापुरुषों के प्रति श्रद्धा, नैतिक मूल्यों के प्रति जागरूकता एवं धार्मिक रूचि आदि गुण उत्पन्न करके उन्हें शालीन, शिष्ट, अनुशासनप्रिय और कर्त्तव्यनिष्ठ बनाना है। इसलिए शिक्षक इस विषय को ऐसी मधुर शैली से पढ़ाएं, जिससे बच्चों की इस ओर रूचि बढ़े और वह स्वतः बड़ी आतुरता से इस विषय के घण्टे के आने की प्रतीक्षा किया करें।

शिक्षक को पहले दिन से ही शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा के विषय का परिचय कराते हुए, विद्यार्थियों को इसकी उपयोगिता से अवगत करवा देना चाहिए कि शिक्षा प्राप्ति के बाद वह चाहे किसी क्षेत्र में भी कार्यरत हों, यह ज्ञान उनको उनके दैनिक जीवन में आयुभर काम आएगा।

शिक्षकों से अनुरोध है कि इस पुस्तक के पाठों को रटाने का प्रयत्न न करें। बच्चों को केवल अच्छी तरह से उदाहरण देकर बात समझा दें। परीक्षा में प्रश्न पूछने की शैली वैसी ही होगी जैसी अन्य विषयों में होती है।

सुरेन्द्र कुमार रैली

3

काहे को दुनिया बनाई

सृष्टि किसने, क्यों, कैसे और किन तत्त्वों से बनाई ?

सृष्टि की रचना का विषय दार्शनिकता से भरपूर एक ऐसा विषय है, जिस पर सदियों से न केवल हमारे ऋषि-मुनि अनुसंधान करते रहे हैं, अपितु विश्व के सभी दार्शनिक, विद्वान् व अन्य आध्यात्मिकता के चरम को छूने वालों का भी यह प्रिय विषय रहा है। जीवन के इन रहस्यों को यदि कोई अपने विद्यार्थी जीवनकाल में ही आत्मसात् कर लेता है तो वह अपने बहुमूल्य जीवन को भविष्य में अंधविश्वासों तथा भ्रान्तियों में फँस कर नष्ट होने से बचा सकता है।

सृष्टि की रचना का वर्णन विश्व के सबसे पुराने ग्रंथ वेद में आया है। ऐसा माना जाता है कि इस ज्ञान को सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही ईश्वर ने चार ऋषियों को दिया था और जिन्होंने मनुष्य जाति के उपकार और मार्गदर्शन के लिए इन्हें चार वेदों में परिवर्तित किया था। आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानंद

आर्य वीरों का गीत

आर्यवीर दल रहा रहेगा प्राण आर्यों का ।
इससे ही होना है नव निर्माण आर्यों का ।।
गुरुवर दयानन्द का इससे गहरा नाता है।
आर्यवीर दल पुनः जागरण शंख बजाता है।।
लेखराम का लहू धमनियों में लहराता है।
सावधान शिशुपालो! चक्र सुदर्शन आता है। ।
सेना फिर से सजे यही कल्याण आर्यों का ।।१।।
आर्यवीर दल राख नहीं जलता अंगारा है।
आर्यवीर दल दयानन्द की आँख का तारा है।।
आर्यवीर दल देशभक्त वीरों की टोली है।
डायर की छाती में ऊधम सिंह की गोली है।।
न्यायालय में पक्का रहा प्रमाण आर्यों का ।।२।।
आर्यवीर दल पेचीदा प्रश्नों का उत्तर है।
आर्यवीर दल जहाँ वहा हर प्रश्न निरुत्तर है।।
आर्यवीर दल संघर्षों की आग में जलना है।
आर्यवीर दल कलयुग में सतयुग का सपना है।।
आर्यवीर दल संजीवन निष्प्राण आर्यों का ।।३।।
आर्यवीर दल सिद्धि नहीं है सिर्फ साधना है।
आर्यवीर दल सुप्त मनुज की दबी भावना है।।
आर्यवीर दल एक सत्य है नहीं कल्पना है।
आर्यवीर दल क्रान्ति सिन्धु है राष्ट्र वन्दना है।।
गीत 'मनीषी' तम में अग्निबाण आर्यों का ।।४।।

हिन्दुओं की रक्षा व सेवा हेतु पश्चिमी पंजाब के रावलपिण्डी, हजारा, जेहलम जिलों में लोगों को जबरदस्त सुरक्षा प्रदान की। पूर्वी बंगाल के नोआखली जिले में हिन्दुओं की निर्मम हत्याओं को रोकने के लिए आर्यसमाज की शिरोमणी संस्था सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने 200 आर्यवीरों को भेजा और अपने प्रधान संचालक श्री ओम प्रकाश त्यागी के नेतृत्व में अपनी जान की परवाह न करते हुए इन आर्यवीरों ने हजारों लोगों की जान बचाई। आर्यवीरों ने न केवल शरणार्थी शिविर लगाए बल्कि उन शिविरों को रात-दिन सुरक्षा प्रदान की।

स्वतन्त्र भारत में जब-जब देश पर प्राकृतिक आपदा आई, आर्यवीरों ने सदैव राहत कार्यों में बढ़-चढ़कर भाग लिया। हाल ही में सन् 2004 में सुनामी लहरों ने जब दक्षिण भारत में कहर बरसाया तो आर्यवीर दल ने 48 घन्टों के भीतर ही पहला राहत शिविर लगा दिया जो पूरे भारत में सर्वप्रथम था और लोगों की सेवा में आर्यवीर जुट गए। इससे पूर्व सन् 2002 में जब गुजरात में भयंकर भुकम्प आया था तो आर्यवीर दल ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हुए कई लोगों की जानें बचाई। इससे पूर्व महाराष्ट्र, उड़ीसा और उत्तराखंड में आए भूकंम्पों में भी आर्यवीरों ने अपने आर्यत्व का पूरा परिचय देते हुए, तन-मन-धन से तबाह हुए लोगों की सेवा की ।

आर्यवीर दल का पूरा इतिहास त्याग, बलिदान, देशभक्ति, सेवा और शौर्यगाथा से परिपूर्ण है। जिन्होंने धर्म एवं राष्ट्ररक्षा के लिए अपना सर्वस्व अर्पण किया, इन परिचित एवं अनाम शहीदों को शत-शत प्रणाम।

तुमने दिया देश को जीवन, देश तुम्हें क्या देगा ?
अपना खून गर्म करने को, नाम तुम्हारा लेगा।

ने भी चारों वेदों का ज्ञान अर्जित किया, उस पर अनुसंधान किया और वेदों का भाष्य भी लिखा तथा सृष्टि के उत्पत्ति-क्रम को आधुनिक काल में प्रचारित व प्रसारित किया। यह लगभग वैसा ही है, जैसा आज के वैज्ञानिक और भूगोल-विशेषज्ञ मानते हैं। आदि स्मृति ग्रंथ 'मनुस्मृति' में भी इसका वर्णन इसी प्रकार आया है ।

सृष्टि की रचना ईश्वर ने अपने स्वाभाविक गुण के आधार पर की । इसके द्वारा जीव मुक्ति के साधनों को अपनाकर मोक्ष के आनंद को प्राप्त कर सकता है, अर्थात् जीवों के भोग तथा मोक्ष के लिए ईश्वर ने यह सृष्टि बनाई ।

सृष्टि की रचना पाँच तत्त्वों से हुई । उनका क्रम है – आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी । इन्हीं पाँच तत्त्वों से ही मनुष्य का शरीर भी बना ।

आओ ! जरा देखें कि सृष्टि का निर्माण किस क्रम से हुआ और वह कौन-कौन से पाँच तत्त्व हैं, जो इस सृष्टि में भी हैं और उन्हीं से हमारे शरीर की रचना भी हुई है तथा हमारी प्रत्येक इंद्रिय उससे प्रभावित भी है।

सबसे पहले **आकाश** (खाली स्थान : Space) बना, जिसका निजी गुण है **शब्द** अर्थात् आवाज और इससे हमारी इंद्रिय बनी 'श्रोत्र' अर्थात् 'कान' जिससे हम सुनते हैं। अतः आकाश हमारे शरीर का पहला तत्त्व है। इससे हम शून्यत्व, चिंता, संदेह, मोह इत्यादि कर्म करते हैं।

आकाश के बाद बनी **वायु**, जिसका निजी गुण है **स्पर्श** किंतु उसमें आकाश का गुण शब्द भी है, क्योंकि वायु जब चलती है तो

उसकी आवाज भी होती है। आँधी-तूफान में यह हमें पूरी तरह सुनाई देती है। अतः वायु में दो गुण हैं – शब्द और स्पर्श अर्थात् यदि वायु ठंडी होगी तो उसके स्पर्श से ठंड का पता चलता है और यदि गर्म होगी तो उसके स्पर्श से गर्म महसूस होता है । अतः वायु हमारी शरीर की रचना में दूसरा तत्त्व है, जिससे त्वक् इंद्रिय अर्थात् चमड़ी से छूना है । इस तत्त्व में हमारा सिकुड़ना, दौड़ना, लाँघना, फैलाना और चेष्टा करना कर्म बनता है।

आकाश, वायु के बाद बनी **अग्नि,** जिसका निजी गुण है **रूप** अर्थात् यह हमें दिखाई भी देती है। आकाश और वायु दिखाई नहीं देते हैं, लेकिन जब अग्नि जलती है तो वह दिखाई भी देती है। अग्नि में अपने इस रूप के एक निजी गुण के अतिरिक्त आकाश और वायु के दोनों गुण भी हैं । क्योंकि इसमें शब्द भी है। जब यह जलती है तो आवाज करती है और स्पर्श का गुण भी है, क्योंकि इसके स्पर्श से गर्मी लगती है। अतः अग्नि हमारे शरीर की रचना में तीसरा तत्त्व है, जिससे नेत्र इंद्रिय बनती है और हम आँखों से देखते हैं। इस तत्त्व से हम भूख, प्यास, आलस्य और निद्रा जैसे कर्म करते हैं।

आकाश, वायु, अग्नि के बाद **जल,** जिसका निजी गुण है **रस** अर्थात तरल पदार्थ जो ऊपरलिखित तीनों तत्त्वों में विद्यमान नहीं है किंतु तीनों तत्त्वों के गुण जल में है। इसमें आकाश का गुण शब्द भी है, इसलिए जब यह बहता और गिरता है तो आवाज करता है। वायु का स्पर्श गुण भी इसमें है, क्योंकि यह ठंडा और गर्म भी लगता है और अग्नि की तरह इसका रूप भी है अर्थात् यह दिखाई भी देता है। अतः हमारे शरीर की रचना में जल चौथा

इसी कुचक्र के शिकार हुए ।

धर्मान्ध लोगों द्वारा अपने नेताओं के बलिदान किए जाने पर उसका प्रतिकार करने के लिए सन् 1927 ई. को महात्मा हंसराज की अध्यक्षता में दिल्ली में एक विराट् महा सम्मेलन हुआ जिसके परिणाम स्वरूप 26 जनवरी, 1929 ई० को आर्य रक्षा समिति के सुदृढ़ अंग के रूप में आर्यवीर दल की स्थापना की गई।

आर्यवीर दल की शाखा प्रत्येक प्रांत, नगर और आर्यसमाज में स्थापित की जाने लगी। इसके नियमित सचालन के लिए बलिष्ठ आर्यवीरों को शिविरों में प्रशिक्षित किया जाने लगा और इस प्रकार सर्वत्र क्षात्र धर्म का प्रचार–प्रसार होने से आर्य नेताओं पर होने वाले आक्रमण रूक गए। सिंहों की दहाड़ सुनकर गीदड़ माँदों में जा छिपे। आर्यजनों के भव्य सम्मेलन, उत्सव, मेले, शोभायात्रा आदि अब निर्विघ्न संपन्न होने लगे। आज भी स्थानीय आर्यसमाज के वार्षिक उत्सव से लेकर आर्य जगत के बड़े-बड़े महासम्मेलनों और आयोजनों की व्यवस्था और सुरक्षा आर्यवीर दल के आर्यवीरों द्वारा संभाली जाती है।

आर्य युवकों ने आर्यवीर दल की कमान संभाली तो आर्य युवतियां पीछे कैसे रह सकती थी, उन्होंने भी आर्य वीरांगना दल का गठन करके आर्यवीर दल के सिद्धांतों और कार्यकलापों के अनुरूप मातृशक्ति के नेतृत्व का दायित्व संभाला।

आर्यवीरों ने स्वतन्त्रता की लड़ाई में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया और 1942 के "भारत छोड़ो-करो या मरो" के आन्दोलन के संग्राम में कूद पड़े। आर्यवीर दल ने हैदराबाद रियासत को भारत में विलय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भारत विभाजन के समय हुए हिन्दुओं के नरसंहार को रोकने और

27
आर्यवीर दल एवं आर्यवीरांगना दल

प्रत्येक जीवंत संगठन की युवा इकाइयाँ होती हैं जिनमें मंजे हुए कार्यकर्त्ता तैयार किए जाते हैं ताकि भविष्य में वह अपने संगठन का कार्य संभाल सकें और उसे, निरंतर आगे की ओर बढ़ाते रहें।

इसी आशय को लेकर आर्यसमाज में युवकों के लिए आर्यवीर दल और युवतियों के लिए आर्यवीरांगना दल की स्थापना की गई जो न केवल इस संगठन की जान है अपितु अज्ञान, अन्याय और अभाव का मुकाबला करने के लिए कृतसंकल्प है। इनमें राष्ट्रीयता कूट–2 कर भरी हुई है और जाति-पाँति, छुआछूत के ज़हर से अछूती, मानव मात्र की सेवा करने का आदर्श लेकर ''कृण्वन्तो विश्वमार्यम'' – 'सारे संसार को श्रेष्ठ बनाओ' ही जिसका उद्‌घोष है और देव दयानन्द के सपनों का आर्यराष्ट्र निर्माण का अरमान है।

आर्यवीर दल की स्थापना

ऋषि दयानन्द के क्रान्तिकारी अभियान से पौराणिक हिन्दू, मुसलमान और अन्य मतावलम्बियों में खलबली मच गई और वह इस क्रांति की ज्वाला को बुझाने के लिए नित नए षडयंत्र रचने लगे। स्वामीजी के निर्वाण के पश्चात् उनके अनुयायी और अधिक उत्साह से पाखण्ड और अधर्म को मिटाने में जुट गए। उनके तर्कों के तीरों के उत्तर तो इन विरोधियों के पास नहीं थे, लेकिन उन्होंने इन महापुरुषों पर प्राणघाती आक्रमण शुरू कर दिए और अमर शहीद वीर लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, महाशय राजपाल

तत्त्व है जो हमारी रसना अर्थात जिह्वा इंद्रिय बनाता है, जिससे हम चखते हैं और स्वाद लेते हैं। इससे शरीर में लार, मूत्र, वीर्य, रक्त और चर्बी इत्यादि बनती है।

सृष्टि क्रम में **पृथ्वी** पाँचवाँ तत्त्व है, जो हमारे शरीर में भी विद्यमान है और इसका निजी गुण है **गंध** अर्थात् सुगंध या दुर्गंध। यह गुण ऊपर के चारों तत्त्वों में नहीं है, लेकिन उन चार तत्त्वों के गुण पृथ्वी में विद्यमान हैं। क्योंकि पृथ्वी में शब्द अर्थात् आवाज है, स्पर्श है, रूप है और रस है। इस तत्त्व से हमारी घ्राण इंद्रिय बनती है अर्थात् नाक से सूँघना। इस तत्त्व से हमारे शरीर में चमड़ी, हड्‌डी, नाड़ी, बाल और मांस बनता है।

इस प्रकार हम देखते है कि सृष्टि के निर्माण में जो पाँच तत्त्व कारक हैं उनसे ही हमारा शरीर भी बनता है। केवल हमारा ही नहीं, सब प्राणियों के शरीरों का निर्माण होता है, चाहे वह पशु हो या पक्षी हो या जलचर हो। इन सभी का निर्माण पाँच तत्त्वों से ही हुआ है। जब यह पाँचों तत्त्व सृष्टि में एक सही अनुपात से रहते हैं तो सब कुछ ठीक-ठाक रहता है और यदि हम इन तत्त्वों से छेड़खानी करके या इनका दुरुपयोग करके, इसका संतुलन बिगाड़ देते हैं तो पर्यावरण भी बिगड़ जाता है और फिर अकाल, भूचाल, अतिवृष्टि, समुद्री तूफान, चक्रवात आदि आपदाएँ आती हैं।

चारों वेदों में यह उल्लेख बार-बार आया है कि सृष्टि की सभी शक्तियाँ उसके लिए काम करती हैं, जो ईश्वर की रचना से प्यार करता है। ईश्वर की रचना से प्यार करने का अर्थ है, इन पाँचों तत्त्वों से बनी सृष्टि के पर्यावरण की रक्षा करना, जिसे हम

अपने दैनिक व्यवहार में कर सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि हम सिगरेट, बीड़ी पीते हैं तो पर्यावरण को दूषित करते हैं। अपने पूरे शरीर का भी नाश करते हैं और दूसरों को भी नुकसान पहुँचाते हैं, यदि हम चिल्लाते हैं या फिर अपने स्टीरियो की आवाज बहुत ऊँची करके बजाते हैं तो भी पर्यावरण को दूषित करते हैं और अपने शरीर की श्रोत्र इंद्रिय अर्थात् सुनने की शक्ति को भी बर्बाद करते हैं। यदि हम अपनी कॉपी, किताब के कागजों को आवश्यकता से अधिक प्रयोग करके यूँ ही फाड़ते-फेंकते रहते हैं तो भी हम पर्यावरण को दूषित करते हैं, क्योंकि कागज भी पेड़ों से बनता है और कागज के दुरुपयोग से ज्यादा पेड़ काटने पड़ते हैं, जो पाँचों तत्त्वों के संतुलन को बिगाड़ता है। इसी तरह हम आवश्यकता अनुसार बिजली, पानी, पेट्रोल और डीजल को कम से कम इस्तेमाल करके और इसकी बरबादी रोककर भी पर्यावरण की रक्षा कर सकते हैं। दूसरी ओर हम प्रतिदिन यज्ञ कर, शुद्ध देसी घी के दीपक जलाकर, ज्यादा से ज्यादा पेड़ लगाकर और उनकी निरंतर सेवा करके पर्यावरण को ज्यादा से ज्यादा शुद्ध और पवित्र करके पाँचों तत्त्वों – आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी की रक्षा कर सकते हैं।

☆☆☆

किसका डर है। केवल हाथ हिलाने-भर की देर है, फिर मेरे लिए कौन-सा काम असम्भव है। मैं अपने मन में हीनता की भावना न आने दूंगा। मैं ईश्वर का अमृत पुत्र हूँ। अतः मैं दीन-हीन नहीं हूँ। मैं हारने के लिए नहीं, अपितु विजय पाने के लिए उत्पन्न हुआ हूँ। लो, मैं निराशा पर विजय पाने के लिए चल पड़ा। आशा की जय हो !

देखना ! इस मंत्र के एक जाप से ही निराशा नष्ट हो जाएगी और अपने तन-मन में तुम्हें आशा की शक्ति का अनुभव होगा।

इस मंत्र को केवल होंठों से जाप नहीं करना चाहिए। होंठ भले ही मौन हों, पर हमारा रोम-रोम आशा की तरंगों से भरपूर हो। मुँह से भले ही हम 'आशा–आशा' न बोलें, पर हमारे हृदय की प्रत्येक धड़कन के साथ आशा का स्वर हमारे शरीर के कण-कण में गूँजता रहे। सुख में तो सभी आशावान होते हैं। बहादुरी तब है जब दुख में भी हम आशा का आँचल न छोड़ें। जब सारी दुनिया निराश और ना उम्मीद होकर बैठ चुकी हो तब भी तुम सफलता के लिए संघर्ष करते रहो और एक दिन तुम निराशा से भी आशा को छीन लाओगे।

आशा संचार का उपाय

जब भी तुम्हारी आशा टूटती नजर आए तब तुम बैठे मत रहो। एकदम उठ खड़े हो। यदि बढ़िया कपड़े न मिलने के कारण तुम निराश हो, तो मजदूरों की बस्ती में चले जाओ और देखो कि उनके पास तन ढकने को चिथड़े भी नहीं हैं। उन्हें अधनंगे देखकर तुम्हें सन्तोष होगा कि तुम लाखों से अच्छे हो। यदि तुम बढ़िया भोजन के लिए निराश हो, तो जाओ, उन भिखमंगों को देखो जिनके पास रूखे-सूखे टुकड़े भी पेट भर खाने को नहीं। यदि तुम अपने रोग से निराश हो तो अस्पताल में जाकर कोढ़ियों, घायलों, अपाहिजों और केंसर के रोगियों को देखो। उन्हें देखकर अपनी स्थिति पर तुम्हें सन्तोष होगा और निराशा दूर होगी। आशा लौट आएगी।

आशा का मंत्र

निराशा के क्षणों में तुम लेटे हो तो उठ बैठो, बैठे हो तो खड़े हो, खड़े हो तो खुली वायु में जाकर किसी एकांत स्थान पर चले जाओ और ईश्वर से प्रार्थना करो कि हे ईश्वर ! मुझे आशा का वरदान दें। यदि आज मुझे कुछ असफलता मिली तो क्या हुआ? मैं फिर प्रयत्न करूँगा और फिर सफल होऊँगा।'

फिर अपने हाथों की ओर देखकर कहो – मेरे ये दो हाथ मेरी सफलता के अमोघ शस्त्र हैं। इनके रहते मुझे

4

त्रैतवाद का सिद्धांत

वैदिक विचारधारा त्रैतवाद के सिद्धांत को मानती है, जिसके अनुसार इस पूरी सृष्टि में ईश्वर, जीव और प्रकृति अनादि हैं अर्थात् ये हमेशा से चले आ रहे हैं और इनका न कोई आरंभ है और न अंत है और न ही यह तीनों कभी नष्ट होते हैं ।

ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीनों अनादि तो हैं, लेकिन इन तीनों में भी कुछ आधार भूत अंतर हैं जो इस प्रकार है।

ईश्वर : ईश्वर एक है, उसका अस्तित्व सदा हर जगह रहता है। अब क्योंकि वह कण-कण में विद्यमान है, अतः उसका अपना कोई शरीर नहीं है और इसीलिए वह चेतन और आनंदस्वरूप है। क्योंकि ईश्वर का अपना कोई निजी शरीर ही नहीं है, इसलिए वह शारीरिक सुख-दुःख से हमेशा अलग (परे) रहता है।

ईश्वर सर्वशक्तिमान है अर्थात् जिसे अपने कार्य करने में किसी और की सहायता की आवश्यकता न हो। ईश्वर के मुख्य तीन कार्य हैं – (1) सृष्टि की रचना करना, (2) इसका कर्मानुसार पालन-पोषण करना अर्थात् जो जीव जैसा कर्म करता है, उसे वैसे ही फल देना, (3) समय आने पर इसका (सृष्टि का) संहार करना ।

जीव : जीव या आत्मा अनेक हैं। ये चेतन तथा अनादि हैं। इनका भी कोई बनाने वाला नहीं है। इनका सीमित अस्तित्व भी सदैव रहता है। वह अल्पज्ञ और एक देशी है। जीवात्माओं का न जन्म होता है और न ये मरते हैं। कर्मफलों के भोग के लिए ईश्वर इन्हें शरीर देता है जिसे साधारणतया हम किसी (शरीर) का जन्म कहते हैं। लेकिन वास्तव में जीवात्मा न जन्म लेता है और न मरता है।

जीव चेतन तो है, परंतु आनंदस्वरूप नहीं है। यह अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख को भोगता है। लेकिन अपने अच्छे और श्रेष्ठ कर्मों से मोक्ष पाकर यह ईश्वर को प्राप्त करके आनंद प्राप्त कर सकता है।

प्रकृति : प्रकृति जड़ है। वैसे तो इसका भी अस्तित्व संसार में सदा रहता है परंतु यह जड़ है, अतः इसमें चेतना नहीं और न इसमें आनंद ही होता है। प्रकृति दरअसल सृष्टि बनाने का उपादान कारण अर्थात् सामग्री है। यह स्वयं न घटती है, न बढ़ती है। इसका केवल रूप बदलता रहता है। प्रकृति चेतन के द्वारा ही गति प्राप्त करती है, जिससे यह सारी सृष्टि बनती है। ईश्वर जीवात्मा के लिए प्रकृति द्वारा ही सृष्टि की रचना करता है।

☆☆☆

क्या तुम भी कभी निराश हो जाते हो? यदि कभी ऐसा अभागा विचार तुम्हारे मन में आए तो उसे एकदम से झटक देना। तुम्हारे पास यौवन, शक्ति और स्वास्थ्य है। यदि तुम जीवन की छोटी-मोटी असफलताओं से हार गए तो निराशा तुम्हारे जीवन को खोखला कर देगी। निराशा ही सबसे बड़ा अपराध है, क्योंकि मनुष्य के पतन के लिए सबसे अधिक यही जिम्मेदार है। निराश मनुष्य की शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। उसका उत्साह मर जाता है। उसमें निर्णय की शक्ति समाप्त हो जाती है और वह जीते-जी मर जाता है। अनेक व्यक्ति संघर्ष के ऐसे क्षणों में हिम्मत हार बैठे जबकि सफलता उनसे कुछ ही दूर रह गई थी। काश ! वे निराश न होते ।

अतः आशा की जय बोलो। यह एक ऐसी शक्ति है जिसका सहारा लेकर आप क्या नहीं कर सकते ? आशा वह रोशनी की किरण है जो कठिनाइयों की घटाओं में भी चमकती है। वह दीप-शिखा है जो असफलता के अन्धकार में भी हमें मार्ग बताती है। आशा के समान शक्ति देने वाला दूसरा कोई शब्द नहीं क्योंकि वह ईश्वर का वरदान है। आशा में मन उत्साह से भर जाता है। शरीर में फुर्ती समा जाती है। मुर्दा हाथ-पाँवों में भी फौलादी ताकत दौड़ने लगती है। फिर आशावादी मनुष्य को लगता है कि उसके सामने पहाड़ भी आए तो उसे उखाड़ फेंकेगा।

दी, अपने हाथों अपने भाग्य का दरवाजा बन्द कर दिया। मेरे जो अन्य साथी मेरे साथ अनुत्तीण हुए थे, उन्होंने अगले वर्ष फिर परिश्रम किया, फिर परीक्षा दी और सबसे अच्छे अंक लेकर उत्तीण हुए। आज उनमें से कोई इंजीनियर है, कोई डॉक्टर है और कोई पढ़-लिखकर उसी विद्यालय में अध्यापक लग गया है। मेरे सब साथी बहुत आगे बढ़ गए और उन्होंने अपने हाथों अपने भाग्य का निर्माण किया। एक मैं ही हूँ जिसका कोई भविष्य नहीं, कोई भाग्य नहीं। मेरे लिए सब रास्ते बन्द हैं, केवल एक दरवाजा खुला है चाट बेचने का। मेरी ओर देखो! मेरी भूलों से सबक सीखो और मेरी दुर्दशा देखकर उस रास्ते पर चलने से बचो, जिस पर चलकर आज मैं विपत्ति में पड़ा हूँ। मेरी सलाह मानो और फिर अपने विद्यालय में लौट जाओ। तुम फिर परिश्रम करो और देखना, अगले वर्ष तुम अवश्य उत्तीण होगे। उठो और याद रखो कि बहादुरी गिरने में नहीं अपितु गिरकर उठने में है।''

चाटवाले का अन्तिम वाक्य राजकुमार के हृदय में ठीक निशाने पर लगा। वह उठकर खड़ा हो गया और उसने कहा – ''मेरे भाई! अब मैं अवश्य पढूँगा और उत्तीर्ण होकर दिखा दूँगा।''

राजकुमार ने सचमुच फिर परिश्रम किया, वह अच्छे अंक लेकर उत्तीर्ण हुआ और आजकल वह एक कॉलेज में प्रोफेसर है।

5

योग और उसके अंग

योग का अर्थ है जुड़ना या जोड़ना। ध्यान करके आत्मा और परमात्मा के जोड़ की विधि योग है। योग दर्शन के सूत्रकार महर्षि पतंजलि ने कहा है, 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' अर्थात् चित्तवृत्तियों को रोकने का नाम योग है। चित्त की सारी शक्तियों को बिखरने से रोककर, एकाग्र करके एक काम, एक विषय (ऑब्जेक्ट) या एक बिंदु पर लगा देना योग है।

मन चंचल है। भटकता है, बहकता है, उड़ता है, बिखरता है। इसकी लहरों को रोकना वायु के वेग को रोकने के समान कठिन है। चक्षु आदि इंद्रियों के माध्यम से चित्त बाहर के सांसारिक पदार्थों में भटकता रहता है, इसलिए साधक इन वृत्तियों को सांसारिक विषयों से हटाकर परमात्मा की ओर लगाने का प्रयत्न करता है। बाहर के विषयों से चित्तवृत्तियों को रोके रहना और फिर उन्हें आत्मचिंतन में लगाना, यह सारी प्रक्रिया योग है। यह प्रक्रिया बड़ी कठिन है, अतः उसे पूर्णता तक ले जाने के लिए आठ सोपान (सीढ़ियाँ) हैं। इन आठ सोपानों को ही योग साधना के आठ अंग कहा गया है। ये आठ अंग निम्नलिखित हैं :—

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

1. **यम** : ये पाँच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह।

अहिंसा – किसी प्राणी को मन, वचन, कर्म से दुःख न देना।

सत्य – सदा सच्चाई के मार्ग को अपनाना। प्रिय तथा हितकारक सत्य बोलना।

अस्तेय – चोरी न करना। जो अपने परिश्रम से कमाया नहीं गया, उसे दूसरों से लेने का प्रयत्न न करना। और न उसे अपने पास रखना।

ब्रह्मचर्य – ब्रह्म अर्थात् परमात्मा में ध्यान रखना। अपनी इंद्रियों को वश में रखना। अपनी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्ति को निरंतर बढ़ाना ।

अपरिग्रह – आवश्यकता से अधिक वस्तुओं को जमा न करना।

2. नियम : ये भी पाँच हैं –

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान।

शौच – बाहर और भीतर से अपने आपको स्वच्छ व पवित्र, रखना ।

संतोष – अपने परिश्रम से जो कुछ भी मिला है उसे स्वीकार करके संतुष्ट व प्रसन्न रहना ।

तप – सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी, हानि-लाभ आदि द्वंदों को एक समान होकर सहन करना। स्वयं को सुख और विलास के जंजाल

26

महान् गुण :
आशावादी

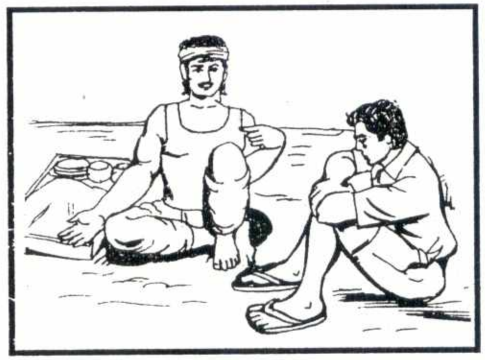

राजकुमार नवीं कक्षा श्रेणी में अनुत्तीर्ण हो गया। निराश होकर उसने पढ़ाई बन्द करने का निश्चय कर लिया। एक दिन वह इसी चिन्ता में एक पार्क में बैठा था। तभी उसके पास से एक चाटवाला निकला। राजकुमार को सुबकते-सिसकते देखकर चाटवाले ने उसकी उदासी का कारण पूछा। राजकुमार की रामकहानी सुनकर चाटवाले को कोई भूली हुई बात याद हो आई। उसका मुख सहसा गंभीर हो गया। उसने छाबा नीचे रख दिया और बोला–" बाबू! आज से कुछ समय पूर्व मैं भी विद्यालय में पढ़ता था। मैं भी तुम्हारी तरह परीक्षा में अनुत्तीर्ण होकर हिम्मत हार बैठा। मैंने भी शिक्षा प्राप्त करने की सब आशाएँ छोड़ दीं और मैंने भी तुम्हारी तरह पढ़ाई बन्द करने का निश्चय कर लिया। मैंने पढ़ाई क्या बन्द कर

सड़क पर चलने वाले सड़क को अपना समझें तो जहाँ-तहाँ आम और केले के छिलके पड़े दिखाई न दें और न लोग फिसलकर गिरें। यदि सब नागरिक नगर को अपना समझें तो वहाँ के पार्क, बाग-बगीचे, भवन, मैदान, बसें, बस-स्टैंड, रेल की पटरियाँ व स्टेशन – अर्थात् नगर की प्रत्येक वस्तु सँवरी–सुधरी हुई दिखाई दे। यदि सब देशवासी देश को अपना समझें तो देश भी उन्नत हो और हम भी सुखी रहें।

हमारा अपनापन केवल वस्तुओं के लिए ही न हो, मनुष्यों के लिए भी हो।

हम दूसरों के दुख को अपना दुख समझें।

हम उनके साथ सहानुभूति और सहयोग करें।

हम दूसरों के सुख में अपना सुख समझें और प्रसन्न हों।

हम दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करें जैसा हम अपने साथ चाहते हैं।

अपनेपन के अनेक लाभ हैं। इससे हमारा हृदय तंग न होकर विशाल बनता है। इससे कार्य करने में हमारी शक्ति बढ़ती है और प्रत्येक कार्य सुन्दर ढंग से पूर्ण होता है। इससे सार्वजनिक उपयोग की वस्तुएँ सुन्दर और टिकाऊ बनी रहती है जिससे सबको लाभ होता है। जिस व्यक्ति से हम अपनेपन का व्यवहार करते हैं, वह हमारा मित्र बन जाता है। अपनेपन से घर, विद्यालय, नगर और देश में एकता बढ़ती है। इससे विभिन्न विचारों, धर्मों और जातियों के लोगों में भी अनुशासन बढ़ता है।

में न फँसने देना ।

स्वाध्याय – अच्छे ग्रंथों को पढ़ना तथा आत्मनिरीक्षण करना।

ईश्वर प्रणिधान – ईश्वर का ध्यान करना, अपने सभी कर्मों को ईश्वरार्पण कर देना।

3. आसन : पर्याप्त समय तक सुखपूर्वक शांत व स्थिर होकर एक ही आसन पर बैठे रहना ।

4. प्राणायाम : श्वास की गति को अपने वश में रखना। रेचक (साँस छोड़ना), पूरक (साँस भरना), कुंभक (साँस रोकना) ये तीन इसके प्रमुख भेद हैं। प्राणायाम करने से हृदय और रक्तचाप के रोग नहीं होते ।

5. प्रत्याहार : कान, त्वचा, आँख, रसना (जिह्वा) और नाक इन बाहर की इंद्रियों से अपना ध्यान हटाकर अंदर आत्मा की ओर लगाना। जैसे, कछुआ अपने अंगों को अपने खोल में समेट लेता है, वैसे ही अपनी इंद्रिय-शक्ति का संचय करना।

6. धारणा : शरीर के किसी एक स्थान पर मन को केंद्रित करना। इससे चित्त एकाग्र होकर स्मरण और चिंतन-शक्ति बढ़ती है।

7. ध्यान : पाँचों ज्ञानेंद्रियों के विषयों से मन को अलग कर लेना और एक ही विषय (केंद्रबिंदु) पर लगाना ध्यान है।

8. समाधि : मन को आत्मासहित परमात्मा में समा देना। केवल परमात्मा की ही अनुभूति होना समाधि की अवस्था है।

अर्थात् योग के इन आठ साधनों से शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा की शक्ति बढ़ती है और हमें काम करने में कुशलता प्राप्त होती है।

योग की पहली सीढ़ी यम

योग के आठ अंगों में यम का पहला स्थान है। यम का व्यवहार समाज के क्षेत्र में होता है। अतः इन का पालन करने से व्यक्ति योग की पहली सीढ़ी चढ़ कर अपने सामाजिक जीवन को श्रेष्ठ बनाता है। अब यम के भेदों पर क्रमशः विचार करते हैं।

1. अहिंसा

मन, वचन और कर्म से गंदी मनोवृत्ति के साथ किसी प्राणी को मानसिक या शारीरिक कष्ट पहुँचाना हिंसा है और सारे प्राणियों के हित के लिए मन, वचन तथा कर्म के द्वारा पवित्र मनोवृत्तियों से कार्य करना ही अहिंसा है।

अहिंसा का अर्थ यह नहीं कि डरपोक बनकर अत्याचार सहन करना। अहिंसा यह भी नहीं है कि धर्म, जाति और देश पर आक्रमण करने वालों के आगे हाथ जोड़ लिए जाएँ। यह भी अहिंसा नहीं है कि अत्याचारी, चोर, डाकू, पापी लोग भोली जनता पर अत्याचार कर रहे हों, तो हम कायरों की भाँति खड़े देखते रहें। अहिंसा यह भी नहीं है कि यदि कोई पागल अपने शस्त्र से अपने आपको और दूसरों को घायल कर रहा हो हम फिर भी, उसका शस्त्र न छीनें। यदि कोई ऐसी बातों को अहिंसा कहता है तो वह अहिंसा के भाव को नहीं समझता।

हमें यह समझना चाहिए कि हिंसा शब्द 'किसी को न मारना' ही के अर्थों में नहीं आता। वास्तव में अहिंसा या हिंसा का संबंध मनोवृत्ति से है। एक कुशल और योग्य डॉक्टर अपने रोगी को बचाने के लिए उसका ऑपरेशन करता है तो क्या आप उसे

दूसरे के घर के आगे कूड़ा डाल दिया। इस प्रकार दोनों घरों के आगे कूड़ा पड़ा था। पहले घर का कूड़ा दूसरे के सामने, दूसरे के घर का कूड़ा पहले के सामने।

विद्यार्थियों! हम सब ऐसी भूलों से बचे हुए नहीं हैं। कई बार हम पानी पीकर सार्वजनिक नल को खुला ही छोड़ देते हैं और उससे देर तक पानी व्यर्थ ही बहता रहता है। ऐसा क्यों ? इसलिए कि वह हमारे अपने घर का नल नहीं। अतः व्यर्थ ही पानी बहने का हमें दर्द नहीं होता। विद्यालय की कुर्सी पर बैठकर हम कितनी बार आगे-पीछे झूलते और उस पर खड़े हो जाते हैं। वह कभी चरमरा जाती है। कभी टूट जाती हे। ऐसा क्यों ? इसलिए कि विद्यालय के फर्नीचर को हमने अपना नहीं समझा। विद्यालय में जिन बेंचों पर हम बैठते हैं, उन्हीं की टाँगें तोड़ने वाले भी हम हैं – क्या यह खेद की बात नहीं है ? खिड़कियों पर जो शीशे हमारे ही उपयोग के लिए लगाए जाते हैं वे हमारे ही पत्थरों से टूटें – यह परायेपन का विचित्र उदाहरण है। यह गलत बात है।

तो ठीक क्या है ?

अपनापन ।

हम अपनी वस्तु को तो अपना समझें ही, अन्य सार्वजनिक वस्तुओं को भी अपना समझें। यदि हम उन्हें सुधार सकें तो अवश्य सुधारें, अन्यथा कम से कम उन्हें बिगाड़ें तो नहीं।

यदि इस प्रकार सब मौहल्ले वाले गली को अपना समझें तो वह साफ-सुथरी रहे। यदि गाँव वाले जोहड़ को अपना समझें, तो उसमें कहीं गन्द दिखाई न दे। यदि

25

महान् गुण :

अपनापन

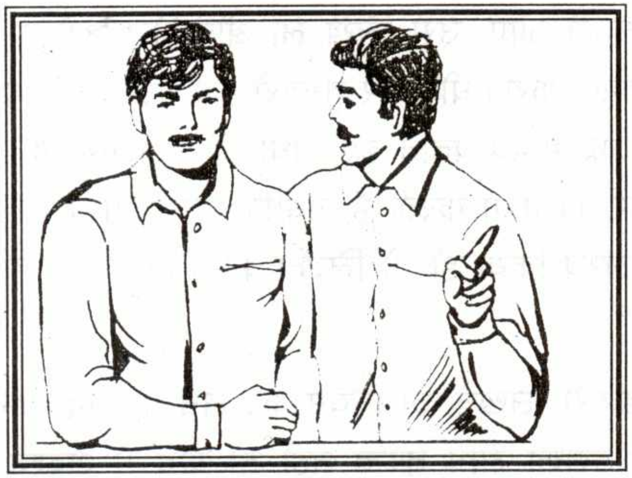

एक बार हम होटल में ठहरे हुए थे। खिड़की के ठीक सामने दो घर थे। सुबह उठते तो उन पर दृष्टि पड़नी स्वाभाविक थी। हमने क्या देखा कि एक घर की महिला ने अपना घर झाड़ा, बुहारा और कूड़ा-करकट उठाकर अपने घर से दूर फेंक आई। कहाँ? दूसरों के घर के आगे।

थोड़ी देर बाद दूसरे घर की महिला जागी। उसने भी अपना घर झाड़ा, बुहारा और कूड़ा-करकट उठाकर अपने घर से दूर फेंक आई। कहाँ ? दूसरों के घर के आगे।

यह देखकर हम खूब हँसे। दोनों महिलाएँ कितनी भोली निकली। उन्होंने अपना घर तो साफ किया, किन्तु एक ने

हिंसक कहेंगे ? नहीं, क्योंकि वह सारा काम सात्त्विक वृत्ति अर्थात् मन, वचन, कर्म से निष्ठा व लगन से कर रहा है। वह अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा है।

कोई देशभक्त सैनिक जब युद्ध में देश के शत्रुओं का हनन करता है तो वह हिंसा नहीं करता, अपितु अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। वेद का भी आदेश है : 'हे वीर ! राक्षसों का संहार कर। हिंसक को कुचल डाल। जो शत्रु तुम्हें दास बनाना चाहें उन वैरियों के क्रोध को तू चूर कर दे।'

वास्तव में हिंसा को रोकना ही अहिंसा है, परंतु यह सारा कार्य राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, भय, ईर्ष्यादि बुराइयों से मुक्त होना चाहिए। गंदी भावना से किसी को हानि पहुँचाने का विचार करना भी मानसिक हिंसा हैं। कटु वचनों के द्वारा किसी को कष्ट पहुँचाना वाचिक हिंसा है। शरीर-द्वारा किसी को हानि पहुँचाना या किसी के प्राण ले लेना शारीरिक हिंसा है। इन तीनों प्रकार की हिंसाओं से अलग होना ही अहिंसा का सच्चा स्वरूप है। अहिंसक व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए किसी को कष्ट नहीं पहुँचाता, बल्कि प्राणियों के सुख और कल्याण के लिए तैयार रहता है। उसकी यह भावना समाज को एक नई सोच देती है।

2. सत्य

सत्य यम का दूसरा अंग है। जैसा कुछ है, जैसा हमने सुना हो, जैसा देखा हो वैसा ही कह देना। जैसा अनुभव किया हो वैसा प्रकट करना सत्य कहलाता है। जो मनुष्य के मन में हो, वही वाणी में हो, वही कर्म में हो, वह सत्य है ।

इस संबंध में एक बात ध्यान रखनी है कि केवल सही बात कह देना ही सत्य नहीं है, अपितु सत्य ऐसी वाणी से बोलो कि किसी के मन को दुःख न पहुँचे।

अतः सत्य बोलो। प्रिय बोलो। सत्य इस तरह न बोलो, जो दूसरों को अप्रिय लगे।

3. अस्तेय

'स्तेय' चोरी को कहते हैं। अस्तेय का अर्थ है चोरी न करो। दूसरे की वस्तु को बिना उससे पूछे या बिना उसका मूल्य दिए लेना भी चोरी है। परंतु चोरी का यही एक रूप नहीं है। अन्य प्रकार की चोरियाँ संसार में प्रचलित हैं। घटिया माल को बढ़िया बताकर बेचना, मिलावट करना, कम तोलना या नापना भी चोरी है। जो निर्धारित काम से कम काम करता है या अपने काम को लगन से नहीं करता है, वस्तुतः वह भी चोर है। यह व्यक्तिगत व सामाजिक दोनों तरह से हानिकारक है।

अन्याय से किसी की संपत्ति, राज्य, धन या अधिकार को छीन लेना चोरी है। गरीबों का रक्त चूसकर धन इकट्ठा करना, मजदूरों को कम मजदूरी देना, अपने लाभ के लिए अन्नों के भंडार जमा करके समय देखकर कीमतें बढ़ा देना, रिश्वत लेना, धन और दलबल के आधार पर जनता को दबाना या देश के हितों का हनन करना सब चोरी है।

उपरोक्त सभी काम व्यक्ति को तो हानि पहुँचाते ही हैं, साथ ही सामाजिक उन्नति व सुख-शांति में भी बाधक बनते हैं। ऋषियों का कहना है कि : 'यदि सारे मनुष्य अस्तेय के मार्ग पर

तुम्हारी आयु लम्बी हो और ईश्वर करे कि तुम मेरे पास रहो। मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानता हूँ क्योंकि जब-जब मैं गलत मार्ग पर चलने जाता हूँ तब-तब तुम मुझे अपने तानों से जगा देते हो।"

विद्यार्थियों ! तुम दैनिक डायरी अवश्य लिखा करो। जो भूल हो जाएं, उसे लिख लो और फिर उसे न दुहराने का संकल्प करो। धीरे-धीरे तुम्हारी सब भूलें दूर हो जाएँगी। डायरी का महत्व बताते हुए गांधी जी ने लिखा है, "डायरी पहरेदार का काम करती है, क्योंकि उसमें सत्य ही लिखना है। आलस्य किया हो तो लिखें। काम कम किया हो तो भी लिखें।"

"डायरी लिखने का नियम कर लेने के बाद कभी नागा न हो। इसका लाभ तुरन्त नहीं तो बाद में अवश्य मालूम होगा। डायरी रखने की आदत ही हमें दोषों से बचा लेगी। उसमें किये हुए दोषों का उल्लेख ही होना चाहिए। उस पर आलोचना करने की जरूरत नहीं। आज 'ब' पर क्रोध आया। आज 'क' को धोखा दिया। बस, इतना ही लिखना काफी है। अपनी प्रशंसा भी नहीं लिखनी चाहिए। दूसरों के दोषों का उल्लेख डायरी में नहीं होना चाहिए। डायरी आत्मसुधार में सहायता करती है।"

यहीं बात खत्म नहीं होती। वे झट दूसरों का नाम ले लेते हैं, "यह शीशा तो श्री.... ने तोड़ा है।" इस प्रकार झूठ पर झूठ, झूठ पर दोषारोपण - यह मनुष्य की आदत बन जाती है। तब वह भूल नहीं रहती चरित्रहीनता बन जाती है, वह व्यक्ति बदनाम हो जाता है सब उससे दूर होने लगते हैं। भूल हो गई तो "हाँ जी भूल हो गई है" कहकर जान छुड़वाई जा सकती है। बहुत हुआ तो डाँट पड़ जाएगी या एक चपत, पर दूसरा व्यक्ति मन में तुम्हें झूठा, बहानेबाज या धोखेबाज नहीं कहेगा, उलटा लोग तुम्हारे साहस की प्रशंसा करेंगे कि तुमने सच बोला।

अब आप स्वयं बताओ कि भूल को स्वीकार कर लेना अच्छा है या इन्कार कर देना ?

'स्वीकार करना' – सबका यही उत्तर होगा।

भूलों से बचने का एक सुनहरी नुस्खा है (1) रोक-टोक का बुरा न मानो अपितु उसके द्वारा अपनी भूलों को पहचानो । (2) आलोचना या अपनी नुक्ताचीनी सुनकर अनसुना मत कर दो अपितु उन पर विचार करो। (3) बड़े लोग उपदेश दें तो उन पर आचरण करो, इससे भूल छूट जाती है। (4) लोग तुम्हारी हँसी उड़ाएँ या चिढ़ाएँ तो चिढ़ो मत, क्योंकि एक तरह से वे तुम्हारा ध्यान तुम्हारी भूल की ओर खींच रहे हैं। किसी विद्वान् ने लिखा है, "मुझे चिढ़ाने वालो! तुम जुग-जुग जियो। मेरे दोष निकालने वालो!

चल पड़ें तो दुनिया के सारे आर्थिक संकट स्वयं दूर हो जाएँ और युद्ध भी समाप्त हो जाएँ।'

4. ब्रह्मचर्य

आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा, मन, बुद्धि आदि इंद्रियों पर नियंत्रण रखना ही 'ब्रह्मचर्य' कहलाता है।

सामान्यतः ब्रह्मचर्य की अवस्था पच्चीस वर्ष तक कही गई है। किंतु वे नर-नारी, पति-पत्नी जो गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्य का सही पालन करते हुए मर्यादा में रहते हैं, ब्रह्मचारी ही कहलाते हैं। हनुमान, भीष्म पितामह और स्वामी दयानंद के जीवन की घटनाएँ ब्रह्मचर्य की शक्ति का स्पष्ट प्रमाण हैं।

वास्तव में ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला व्यक्ति अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्ति से प्रभु को पाने में समर्थ होता है। ऐसा व्यक्ति जनता को अपनी सोच व व्यवहार के अनुकूल बना लेता है। सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि ऐसे व्यक्ति से समाज में संयम व मर्यादा व अनुशासन बने रहते हैं। ब्रह्मचर्य से शरीर सुंदर और स्वस्थ बनता है, मन अच्छा और संतुलित बनता है, बुद्धि सुंदर और प्रखर बनती है और आत्मा बलवान् बनती है।

5. अपरिग्रह

परिग्रह का अर्थ है – नितांत संग्रह अर्थात् धन और भौतिक वस्तुओं को जोड़ते ही रहना और जोड़ते-जोड़ते मर जाना। अतः अपरिग्रह का अर्थ है – गलत संग्रह न करना।

यदि हम सुख और शांति चाहते हैं तो हमें अपनी आवश्यकताओं से अधिक वस्तुओं का संग्रह कदापि नहीं करना चाहिए। हमारी आवश्यकताएँ जितनी बढ़ेंगी उतनी ही समाज में अशांति भी बढ़ेगी। क्योंकि उन अनावश्यक वस्तुओं को पूरा करने के लिए हमें उलटा-सीधा धन इकट्ठा करना होगा। इस धन को प्राप्त करने के लिए हमें दूसरों से दुर्व्यवहार भी करना होगा। रिश्वतखोरी का जन्म इकट्ठा करने की भावना से ही हुआ है। आज कल दुनिया धन इकट्ठा करने के जाल में फँसी हुई है। स्वयं दुःखी है और दूसरों को भी दुःख दे रही है। बड़े-बड़े देश कमजोर देशों को पीड़ित कर रहे हैं। एक ओर तो तन ढकने के लिए वस्त्र नहीं और दूसरी ओर वस्त्रों का इतना भंडार है कि उसकी रक्षा के लिए चौकीदार रखने पड़ते हैं। एक व्यक्ति अनेक मकानों, कोठियों और बँगलों का स्वामी है और दूसरे के पास सिर छिपाने, धूप-पानी से बचने के लिए एक कुटिया भी नहीं। एक ओर अन्न के गोदाम भरे पड़े हैं तो दूसरी ओर अकाल पीड़ित लोग भूख से तड़पते हुए सड़कों पर मर रहे हैं। अतः दुखी संसार के रोगों की एक मात्र दवा अनुचित संग्रह न करने की भावना (अपरिग्रह) ही है।

अतः यम का अर्थ है वश में करना, अनुशासन और मर्यादा में रहना। वास्तव में ये पाँचों यम 'व्रत' कहलाते हैं और जो भी इनका पालन करता है, वह मर्यादापूर्वक जीता हुआ संसार का कल्याण करने वाला है। यदि सभी लोग इन पाँच व्रतों का पालन करें तो दुनिया सुख-समृद्धि में स्थिर हो जाएगी और इससे अनेक समस्याओं का समाधान हो सकेगा।

24

महान् गुण : भूल स्वीकार करना

आपसे भूल हो गई, तो छिपाइये नहीं। मान लीजिए और आगे के लिए सावधान रहिए। बस इतनी सी बात है।

किन्तु कई लोग बात का बतंगड़ बना देते हैं, एकदम मुकर जाते हैं। "नहीं जी! मुझे तो पता ही नहीं।" यदि एक झूठ से पीछा नहीं छूटता तो वे दूसरा झूठ बोलते हैं, दूसरे के बाद तीसरा और फिर झूठ का कोई अन्त ही नहीं। हर झूठ दूसरे झूठ से टकराता है। उसकी झुकी आँखें कह रही हैं कि भूल उसी से हुई है। लेकिन अपने मुख से यही रट लगाते रहेंगे, "मैंने नहीं किया"।

की आज्ञाएँ नगर का अच्छा प्रबन्ध करवाती हैं। राष्ट्र के नेताओं की आज्ञाएँ देश में सुख, शान्ति और उन्नति उत्पन्न करती हैं। आप ही सोचो! यदि घर में कोई किसी की न माने। यदि विद्यालय में सब छात्र अध्यापकों की आज्ञा का उल्लंघन करें। यदि सिपाही सेनापति का आदेश मानने से इनकार कर दें और यदि देश के लोग अपने नेताओं की आज्ञा को सुना-अनसुना कर दें तो, सब जगह हो-हल्ला मच जाएगा और पूरी व्यवस्था चौपट हो जाएगी अतः इन सबका एक ही इलाज है – 'आज्ञापालन'

आज्ञापालन से हमें सबसे बड़े दो लाभ हैं-हम बुरे रास्ते से बचते हैं। और अच्छे रास्ते की ओर जाते हैं। प्राचीनकाल में गुरू अपने शिष्य को स्वयं प्रेरणा देते थे,

"जो हमारी अच्छी बातें हों, उन्हें तुम अवश्य मानना और उन पर आचरण करना। अन्य बातों को नहीं।"

बड़ों का आज्ञापालन करते हुए हमें इस वैदिक आदर्श को अवश्य ग्रहण करना चाहिए। जिसमें साफ-साफ कहा है कि जो बातें असत्य और अंधविश्वास पर आधारित हों उनको कभी नहीं माननी चाहिए। इस विषय में गांधी-जीवन की एक घटना प्रसिद्ध है :

गांधीजी जब छोटे थे तो एक विद्यालय में पढ़ते थे। एक दिन शिक्षाधिकारी उस विद्यालय का निरीक्षण करने के लिए आए। उन्होंने सारी कक्षा को एक प्रश्न लिखवाया। गांधीजी के ठीक आगे बैठे छात्र ने सही उत्तर निकाल लिया, किन्तु गांधी जी न निकाल सके। यह देखकर अध्यापक ने बालक गांधी को संकेत किया कि अगले छात्र का उत्तर देखकर नकल कर लो। लेकिन नकल करना बहुत बुरी बात है, यह सोचकर गांधी जी ने अध्यापक के कहने पर भी नकल नहीं की।

योग की द्वितीय सीढ़ी–नियम

योग के आठ अंगों में यम के पश्चात् दूसरा स्थान नियम का है। यम का व्यवहार समाज के क्षेत्र में होता है, नियम का व्यवहार व्यक्ति के निजी क्षेत्र में होता है।

नियम पाँच हैं : **शौच सन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।**

अर्थात् शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान । ये पाँच नियम हैं।

1. शौच

शुद्धि, स्वच्छता, शारीरिक और मानसिक पवित्रता को शौच कहते हैं। जीवन को सुखी, स्वस्थ तथा आनंदमय बनाने के लिए पवित्रता की आवश्यकता हैं। पवित्रता को सफाई तथा ईमानदारी इन दो भागों में बाँट सकते हैं। सफाई का संबंध शरीर से, वस्त्रों से, घर और बाहर से तथा वातावरण से है। ईमानदारी का संबंध धन और मन से है।

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए उसे स्वच्छ रखना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए प्रतिदिन पेट की सफाई, दातुन, स्नान आदि करके स्वच्छ वस्त्रों को धारण करना चाहिए। घर और बाहर को झाड़ू-बुहारी, पोंछा, सफेदी आदि से स्वच्छ करना चाहिए। वातावरण की शुद्धि के लिए पुष्पों के पौधे, तुलसी, केले और नीम, पीपल आदि बड़े वृक्ष सहायक होते हैं। यज्ञ-हवन वातावरण की शुद्धि का सर्वोत्तम साधन है।

धन की शुद्धि का अभिप्राय यह है कि हमारी कमाई ईमानदारी की हो। चोरी, ठगी, लूटमार, शोषण की न हो। खून-पसीने की हो। मन की शुद्धि का अभिप्राय यह है कि हमारा मन ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार आदि बुरे भावों से मुक्त होकर दूसरों के प्रति मैत्री, सद्भावना और सहयोग आदि सद्भावों से भरा रहे। मनु महाराज ने इन सब पवित्रताओं में धन की पवित्रता को मुख्य माना है।

2. संतोष

पूरी तत्परता, पुरुषार्थ और प्रयत्न से किए हुए कर्म का जो फल प्राप्त हो, उससे अधिक का लोभ न करना संतोष कहलाता है। विजय हो या पराजय, हानि हो या लाभ, सुख हो या दुःख सब अवस्थाओं में मन प्रसन्न रखना ही संतोष है।

संतोष का अर्थ आलस्य नहीं है, अपितु अपने कर्त्तव्य को पूरे पुरुषार्थ से पूर्ण करना और उसका जो फल मिले उसी पर संतुष्ट रहना संतोष कहलाता है। लालसा और तृष्णा का दास न बनना संतोष है। इच्छा जितनी घटेगी, सुख उतना ही बढ़ेगा। इच्छा ऐसी आग है जो संतोष के जल के बिना बुझती ही नहीं। संतोष सुख का और असंतोष दुःख का मूल है।

3. तप

जीवन में अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए धैर्य और प्रसन्नता से सुख-दुःख, भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, इनको सहन करना तप है। व्यक्ति को चाहिए कि वह सदा अपने कर्त्तव्य का पालन

23

महान् गुण : आज्ञापालन

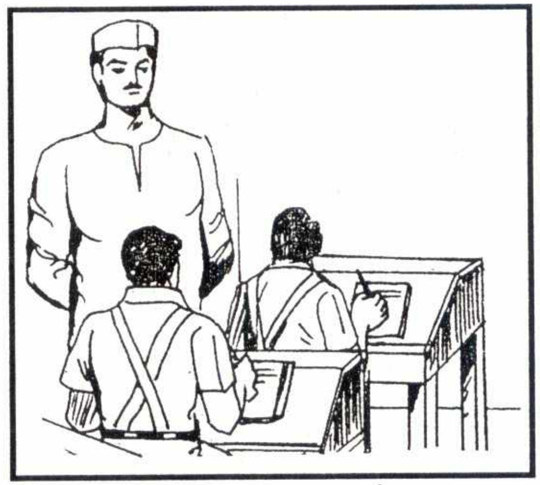

आज्ञापालन से अनेक लाभ होते हैं, पर हानि एक भी नहीं होती। आज्ञापालन से व्यक्ति में नम्रता आती है। अहंकारी या अकड़वाला मनुष्य किसी की आज्ञा मानने में अपना अपमान समझता है। वह समझता है कि अपनी मनमानी करने में उसकी शान है। ऐसी अकड़ बेकार है। वह छूट जाए तो अच्छा। अकड़ गई तो समझो नम्रता आई। जिसमें नम्रता है वह बड़ों का आदर करता है। आदर बढ़ जाता है तो वह सेवा का रूप धारण कर लेता है। फिर सब जानते हैं "जो करे सेवा, उसे मिले मेवा।'

आज्ञापालन से अनुशासन बढ़ता है। घर में सब अपनी-अपनी मनमानी करने लगें तो कोई भी सुख से न रह सके। माता-पिता की आज्ञा से सब काम नियम से होते हैं, जिससे लाभ पहुँचता है। इसी प्रकार विद्यालय में अध्यापकों की आज्ञाएँ स्वस्थ और व्यवस्थित वातावरण तैयार करती हैं। सेना में सेनापति की आज्ञा सिपाहियों की शक्ति बढ़ाती है और उन्हें विजय की ओर ले जाती है। नगर के अध्यक्ष

व्यापारिक क्षेत्रों में तो इन गुणों का मूल्य अपरिमित है। कुछ युवा लोग यह समझ बैठते हैं कि व्यापारिक बुद्धि और हिसाब-किताब का ज्ञान होना चाहिए, फिर भाग्य के द्वार अपने-आप ही धड़ाधड़ खुलने लगेंगे। परन्तु उन्हें पछताना पड़ता है। वे भूल जाते हैं कि दूसरों को प्रसन्न रखने की कला ही उन्नति की कला है। वे नहीं जानते कि शिष्टाचार लोकप्रियता का पासपोर्ट है और वहीं उन्नति का रास्ता बनाता है। ये उन्नति तो करना चाहते हैं पर अपने अशिष्ट, अभद्र व्यवहार और बातचीत द्वारा उन्नति का प्रत्येक मार्ग अपने ही हाथों बन्द कर देते हैं। वे लोग स्वयं यह नहीं जानते कि उनकी अभद्रता वह तमाचा है जो उनके अपने ही गाल पर पड़ता है। अशिष्टता सारे गुणों पर पानी फेर देती है जबकि मधुरभाषी व्यक्ति को सभी चाहते और आदर करते हैं।

करता रहे । सुख आए या दुःख, गर्मी हो या सर्दी, मान हो या अपमान, कष्ट-क्लेश हो या आराम, इन सबको प्रसन्नता से सहन करते हुए अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता चला जाए।

विद्यार्थी के लिए तप यही है कि उचित खाए, उचित सोए और आलस्य में समय नष्ट न करे, कम से कम समय में अधिक से अधिक विद्या ग्रहण करे। गृहस्थी का तप अपने परिवार, समाज एवं राष्ट्र की सेवाओं में समय बिताना और इस कार्य में कष्ट सहन करना ही है। ब्राह्मण का तप वेदों का अध्ययन करना तथा धर्म का प्रचार करना तथा समाज को शिक्षा एवं प्रेरणा देकर सही मार्ग दर्शन करना है। क्षत्रिय का तप देश तथा समाज की रक्षा के लिए कष्ट सहना है।

गीता में तीन प्रकार के तप बताए गए हैं शरीर का, वाणी का और मन का। शरीर का तप यह है कि सात्त्विक भोजन करें और घूमें। वाणी का तप यह है कि सत्य, प्रिय और मीठा बोलें। मन का तप यह है कि कुत्सित भावों और विचारों से अपने मन को बचाकर रखें उसे शुद्ध और पवित्र संकल्पों से भरपूर रखें।

4. स्वाध्याय

स्वाध्याय अर्थात् स्व-अध्ययन, अपने मन और आत्मा का निरीक्षण। ओ३म् का जप, गायत्री का जप, वेद, उपनिषद् आदि पवित्र ग्रंथों का पाठ स्वाध्याय कहलाता है। उसके साथ ही सदा अपने जीवन की घटनाओं पर दृष्टि रखना कि मैं ये क्या और क्यों कर रहा हूँ और किधर जा रहा हूँ ?

जब वेद, उपनिषद्, गीता या किसी अन्य पवित्र ग्रंथ को लेकर आप स्वाध्याय करने बैठें तो पूरी श्रद्धा, प्रेम और भक्तिभरे मन से बैठें। इस भावना से स्वाध्याय करें कि मानो आप आत्मा को पवित्र करने और अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए विद्वानों और ऋषियों से बातचीत करने में लगे हैं और उनका सत्संग कर रहे हैं।

तैत्तिरीय आरण्यक में लिखा है कि स्वाध्याय पाप से बचाने वाला है। शतपथ ब्राह्मण में तो यहाँ तक लिखा है कि मन से स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति कभी पराधीन नहीं होता, दिन-प्रतिदिन अपने लक्ष्यों को प्राप्त करता हुआ वह स्वयं अपना परम चिकित्सक बन जाता है। श्री व्यासजी ने लिखा है कि देवता, ऋषि और सिद्ध लोग स्वाध्यायशील (अपना अध्ययन करने वाले) के पास आते हैं और उसके कार्य में सहायक बनते हैं। स्वाध्याय उत्तम सत्संग के समान होता है।

5. ईश्वर प्रणिधान

ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है – अपने सब कर्मों को ईश्वराधीन मानकर उसी की सेवा में अर्पण कर देना। भाव यह है कि जो भी कर्म किए जाएँ, फल सहित उनको ईश्वर को अर्पण कर देना। ईश्वर प्रणिधान की भावना रखने वाला जो भी कर्म करेगा उसे पूरी सावधानी से करेगा, क्योंकि वह जानता है कि उसका सारा कर्म ईश्वर को अर्पण करने के लिए ही है।

22

शिष्टाचार

अशिष्ट व्यवहार जिन दरवाजों को बन्द कर देता है, विनम्रता उन्हें खोल देती है। हजारों सफल व्यक्ति इस बात के साक्षी है कि जहां अच्छी से अच्छी जबान हार जाती है, वहां शिष्ट व्यवहार सफल हो जाता है।

भद्रता अपने-आप में ही एक जोरदार विज्ञापन है। सफल चिकित्सकों से पूछिए, उनकी सफलता का कारण यही है कि उनके सौजन्य, दयालुता और भद्रता की प्रशंसा उनके रोगी मुक्तकंठ से करते हैं, और इस प्रकार उनके नाम का खूब प्रचार होता है। विभिन्न व्यावसायिक क्षेत्रों में अनेक लोगों ने इन्हीं गुणों के बल पर सफलता प्राप्त की, जबकि उनसे कहीं अधिक योग्य व्यक्ति इस गुण के अभाव के कारण उन्नति नहीं कर सके।

भारत के मूल निवासी आर्य थे

विश्व की सर्वप्रथम पुस्तक वेद है और विश्व की प्राचीनम संस्कृति वैदिक संस्कृति है। भारत देश का सर्वप्रथम नाम आर्यावर्त्त था, क्योंकि आर्य ही इस देश के मूल-निवासी थे। विदेशी लेखकों का यह विचार है कि आर्य लोग इस देश के मूल-निवासी ही नहीं थे; इससे वे सिद्ध चाहते हैं कि भारत आर्यो का देश नहीं है, और वह भी आक्रमणकारी है। यह विचार दोषपूर्ण है। आर्य ही इसके मूल निसासी थे। अन्य कोई इसको बसानेवाला नहीं था। आर्यों से पूर्व यहाँ कोई नहीं रहता था। विदेशी लेखकों ने ही यह भ्रांति भी फैलाई है कि प्राचीन काल में आर्य लोग अनपढ़ और गँवार थे। जबकि ऐसा नहीं था। आर्य लोग अनपढ़ और गँवार नहीं थे, प्रत्युत विज्ञान और विद्या के क्षेत्र में आज से भी अधिक शिखर पर पहुँचे हुए थे। आयुर्वेद प्राचीन आर्यों की ही देन है, जो सर्वश्रेष्ठ चिकित्सापद्धति है। रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों में शस्त्र-अस्त्रों और विमान आदि के प्रयोग का वर्णन मिलता है। ज्योतिष, गणित आदि विषयों में भी प्राचीन आर्यलोग निपुण थे। उन्होंने सूर्य, चंद्र तथा ग्रह-नक्षत्रों की गतियों का जो वर्णन किया है, उसे आधुनिक खगोल-शास्त्री भी मानने लगे हैं।

जब हमें किसी बड़े अधिकारी, साधु-संत या महात्मा को श्रद्धा से कोई वस्तु, वस्त्र, फल या मिठाई आदि भेंट करनी हो तो प्रयत्न यही होगा कि भेंटस्वरूप उत्तम से उत्तम वस्तु उन्हें दी जाए। फल कच्चा या सड़ा-गला न हो। मिठाई शुद्ध घी की हो। जब भेंट भगवान् को करनी हो तो भी क्या यही प्रयत्न नहीं होगा कि अब कोई गलत कर्म न होने पाए। मन, वचन, कर्म ऐसे हों कि उनके द्वारा जो कुछ भी हो, उसे प्रभु के सामने भेंट करते हुए हमें लज्जा न आए। अतः इस प्रकार ईश्वर को समर्पित हुआ भक्त उसी के लिए खाएगा, उसी के लिए पीएगा, उसी के लिए जीएगा और उसी के लिए मरेगा। गीता में कहा गया है कि जो पुरूष अपने सब कर्मों को परमात्मा को अर्पित करके, स्वार्थ को त्यागकर कर्म करता है, वह जल में कमल के पत्ते के समान इस संसार में पाप से बचा रहता है।

6

जीव स्वतन्त्र सत्ता है

यह प्रश्न कई बार उठता है कि जीव परमात्मा का अंश है अथवा स्वतंत्र सत्ता है अथवा यह शरीर का ही हृदय और मस्तिष्क का एक भाग है। वैदिक चिन्तन में इसे स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार किया गया है। इस संबंध में महात्मा नारायण स्वामी जी द्वारा अनेक साक्ष्य प्रस्तुत किए गए हैं –

1. जब बाह्य और अन्तःकरण भी क्लोरोफॉर्म (बेहोशी की दवाई) व समाधि के द्वारा बेकार कर दिए जाते हैं तब भी प्राणियों के शरीर जीवित प्राणियों के सदृश्य बने रहते हैं, न बेकार होते, न सड़ते-गलते हैं, इसलिए किसी ऐसी सत्ता का शरीर में मौजूद रहना विवश होकर मानना पड़ता है जो इन्द्रियों के विकार होने पर भी शरीर गलने सड़ने से सुरक्षित रहता हे। समाधिस्थ पुरुषों के अनेक उदाहरण अब भी मिलते हैं। महाराजा रणजीत सिंह का किया हुआ परीक्षण प्रसिद्ध ही है जिसमें एक योगी 40 दिन तक समाधिस्थ रहा और एक सन्दूक के भीतर बन्द करके रखा गया था और जिसकी कुंजी महाराजा के खजांची के पास रखी गई थी। यह परीक्षा अंग्रेज पोलीटिकल एजेंट व अनेक लोगों की उपस्थिति में की गई थी, जिनमें एक सिविल सर्जन, भी था जिसने 40 वें दिन सन्दूक खुलने पर डाक्टरी जांच करके योगी को मृत घोषित किया। परन्तु थोड़ी देर में आवश्यक मालिश

की परिपाटी चल रही है, जिसमें ब्राह्मणों को खाना खिलाकर यह समझा जाता है कि हमारे पितर इससे तृप्त हो जाएँगे। पर यह कैसे हो सकता है ? क्योंकि उनके शरीर तो भस्म हो चुके हैं और आत्मा अमर है। आत्मा को इस खान-पान की कोई आवश्यकता भी नहीं। वैदिक शास्त्रों के अनुसार तर्पण व श्राद्ध जीवित माता-पिता और संबंधियों का होना चाहिए, जोकि उनकी श्रद्धापर्वूक सेवा से ही हो सकता है। यही सच्चा श्राद्ध है। हाँ! हम पूर्वजों की याद में यज्ञ, दान आदि करें और उनके अच्छे गुणों और कर्मों को स्मरण करके अपने जीवन में लाएँ, तो यह बहुत अच्छा है। इससे उन्हें तो कुछ प्राप्ति नहीं होगी, परंतु हम शुभ कार्य करके लाभ उठाएँगे।

गंगा आदि नदियों में नहाने से क्या पाप धुल जाते हैं ?

नहीं, ऐसा नहीं है। गंगा-यमुना नदियाँ हमारे देश की संस्कृति की प्रतीक हैं। इनके किनारे अनेक ऋषि-मुनियों के आश्रम हैं। उनकी घोर तपस्या के कारण वे स्थान हमारे लिए तीर्थ-स्थान बन गए हैं। इसके अतिरिक्त गंगा नदी के निर्मल जल में कुछ ऐसे रसायन और जड़ी-बूटियों के रस मिल जाते हैं, जिनसे इसका शुद्ध जल बहुत देर तक पड़ा रहने पर भी खराब नहीं होता। परंतु किसी भी नदी में नहाने से शरीर तो धुल सकता है, पर पाप नहीं।

भगवान् श्रीराम, भगवान् श्रीकृष्ण, भगवान श्री दयानंद आदि। यह सब महापुरुष मनुष्य ही थे। क्योंकि इनका जन्म भी हुआ था, शरीर भी था, माता-पिता भी थे और उन्होंने जीवन में अति उत्तम और अद्भुत काम किए। इसके विपरीत ईश्वर अर्थात् 'ओ३म्' उसको कहते हैं, जो निराकार, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान है। ऐसा ईश्वर अजन्मा होता है सदैव रहता है।

स्वर्ग और नरक

अनेक मत-मतांतरों में स्वर्ग और नरक की परिभाषा भिन्न-भिन्न है। कोई इसे तीसरे आसमान पर, कोई पाँचवें और कोई सातवें आसमान पर कहता है। कोई इसे वैकुंठ में बताता है। पर बुद्धि एवं वैज्ञानिक आधार पर ऐसा कुछ भी नहीं है। वैदिक धर्म के अनुसार स्वर्ग और नरक इसी संसार में, इसी जीवन में हैं। जहाँ सुख है, वहाँ स्वर्ग है। जहाँ दुःख है, वहाँ नरक है। जिन परिवारों में चाहे कितनी भी धन-धान्य, संपत्ति हो, लेकिन घर में आपसी वैर-विरोध, ईर्ष्या-द्वेष, लड़ाई-झगड़े हैं, वहाँ नरक है। परंतु जिस घर में प्यार, ईश्वर की पूजा, आपसी सहयोग तथा जहाँ सब लोग प्रेम से रहते हैं, वहाँ स्वर्ग है।

श्राद्ध तर्पण क्या है ?

आजकल अपने मृतक पूर्वजों के नाम पर लोगों में श्राद्ध-तर्पण

आदि करने के बाद वह योगी आखें खोलकर सबको देखने और बातें करने लगा था।

2. जब मनुष्य जाग्रत और स्वप्नावस्था में न होकर सुषुप्तावस्था (गाढ़ निद्रा) में होता है। जिस अवस्था में मनादि सभी इन्द्रियाँ अचेत रहती हैं तो जागने पर सोने वाला अनुभव करता है कि बहुत आराम से सोया। यह अनुभव करने वाला ही आत्मा है।

3. शरीर विज्ञानविद् बतलाते हैं कि मनुष्य का समस्त शरीर सात या बारह वर्ष के बाद बिल्कुल नया हो जाता है। कुछ भी पुराने परमाणु बाकी नहीं रहते, परन्तु मनुष्य को बुढ़ापे में भी बचपन की बातें याद रहती हैं। अतः यह मानना पड़ता है कि यह याद रखने वाला आत्मा ही है क्योंकि शारीरिक अवयव तो उस समय के बाकी नहीं होते।

4. दूरबीन या खुर्दबीन के द्वारा देखने से दूर की चीज पास या छोटी चीज बड़ी दिखाई देती है। इन्द्रियों के ज्ञान की सीमा तो उतनी ही है जितना ज्ञान उन्हें उनके द्वारा प्राप्त होता है परन्तु मनुष्य समझता है कि वास्तव में दिखाई देने वाली वस्तुएँ तो उतनी पास ही है, और न उतनी ही बड़ी दिखाई देती है – यह समझने वाला आत्मा ही है।

5. दो बालकों में जो एक ही परिस्थिति में रहते और शिक्षा पाते हैं, एक योग्य बन जाता है और दूसरा अयोग्य रह जाता है। इसका कारण पूर्व जन्म के संस्कार बताए जाते हैं परन्तु पिछले संस्कार किस प्रकार नए शरीर में आ सकते हैं यदि कोई सत्ता उनको आश्रय देने वाली न हो। इसी आश्रयदात्री सत्ता का नाम जीवात्मा है।

6. मौत का भय सबसे बड़ा भय है। शरीर नश्वर होने से मृत्यु के भय से ग्रस्त रहता है परन्तु आत्म-बल प्राप्त होने से मनुष्य इस भय से रहित और निर्भीक हो जाता है। इसका कारण अमर आत्मा का शरीर में होना ही है। आत्मा अमर होने से मृत्यु के भय से स्वतन्त्र होता है और आत्मिक बल प्राप्त होने का भाव यह है कि आत्मा के ऊपर से प्रकृति के आवरण का दूर हो जाना। आवरण हटने से भय भी जो उसी आवरण के साथ हट जाता है। इस प्रकार आत्मा की स्थिति है।

7. मनुष्य जब कोई पाप कर्म करना चाहता है तो शरीर के भीतर से उस पाप कर्म को रोकने वाली प्रेरणा उत्पन्न होती है जिसको अन्तःकरण वृत्ति (Conscience) कहते हैं। यह वृत्ति भी आत्म सत्ता का बोध कराती है।

8. मनुष्य अपने मस्तिष्क को स्वाध्याय में लगाता व अन्य इन्द्रियों को अन्य किसी कार्य में प्रवृत्त करता है। मस्तिष्क इन्द्रियों के थक जाने पर भी मनुष्य में इस काम (स्वाध्याय आदि) करने की इच्छा बनी रहती है। इन्द्रियां तो थककर विराम चाहती है परन्तु भीतरी इच्छा उसी आत्मा की सत्ता की साक्षी देती है जो ज्ञान-वृद्धि के लिए इन्द्रियों को विश्राम नहीं लेने देता ।

9. यह स्पष्ट है कि एकान्तवास से मानसिक उन्नति होती है। ऐसा क्यों होता है ? इसका कारण यह है कि एकान्तवास में इन्द्रियों को दौड़–धूप करने का अवसर बहुत थोड़ा रह जाता है और इसलिए जो भीतरी शक्ति इन्द्रियों के काम में लगे रहने से निरन्तर उनके साथ लगी रहती थी वह सब भीतर ही एकत्रित होती है। इसी का नाम मानसिक बल है। यह बल (शक्ति)

21

महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ

सुख, शांति और आनंद

जो इंद्रियों के द्वारा आत्मा को अनुकूलता की अनुभूति होती है, वह सुख है। सुख इंद्रियों को प्राप्त होता है, जैसे स्वादिष्ट भोजन। यह सांसारिक पदार्थों से मिलता है। शांति आत्मा को मन से मिलती है। जैसे किसी को खाना खिलाने से या किसी दुःखी की सहायता करने से। आनंद ईश्वर-चिंतन से प्राप्त होता है। आनंद प्राप्ति से इंद्रियाँ और मन कार्य नहीं करते। इसे आत्मा स्वतः अनुभव करता है। यह परमात्मा के सानिध्य से ही प्राप्त होता है।

भगवान् और ईश्वर में अंतर

ईश्वर के अनेक नाम हैं, जिनको हमने ईश्वर के अध्याय में विस्तृत रूप से लिखा है; जैसे–श्री, शिव, भगवान् आदि। आज हम बड़ों के सम्मान के लिए श्री शब्द सबसे पहले विशेषण के रूप में लगाते हैं। इसी प्रकार महापुरुषों के नाम के आगे भगवान् लिख देते हैं। इस प्रकार भगवान् तो एक प्रकार की सम्मान-सूचक उपाधि है, जो हम किसी महान् व्यक्ति को देते हैं। जैसे –

से ही होती है । अराजकता को बढ़ावा मिलता है। चालकों की असावधानी से सड़क दुर्घटनाएं हो जाती हैं अतः नशाबन्दी से ही देश की उन्नति संभव है। स्वामी दयानन्द सरस्वती एवं महात्मा गांधी ने नशाबन्दी के लिए उल्लेखनीय कार्य किए। आज की पीढ़ी को इस दुर्गुण से सचेष्ट रहना है; तभी देश का उद्धार सम्भव है। शराब के विषय में मनुस्मृति में कहा गया है।

मांस और शराब, यक्ष, राक्षस, पिशाच तथा नीच मनुष्य का भोजन है।

शराब के विषय में महात्मा गांधी ने लिखा है – 'मैं शराब को चोरी यहां तक की वेश्यावृत्ति से भी अधिक निन्दनीय मानता हूं।'

डा. रघुवीर वेदालंकर

निराश्रित नहीं रह सकता। इसका आश्रय दाता आत्मा ही है जिसके स्वाभाविक गुण ज्ञान और प्रयत्न है।

10. शरीर जिन प्राकृतिक अणुओं से बना है विज्ञान ने प्रमाणित कर दिया कि वे नष्ट नहीं होते । उनकी केवल अवस्था परिवर्तित होती रहती है। जब आत्मा की अपेक्षा बहुत स्थूल प्रकृति ही अनश्वर है तो आत्मा के अमर होने में सन्देह ही क्या हो सकता है ? इसलिए उपनिषदों और गीता आदि में जीवात्मा को अमर कहा गया है।

अर्थात् जीवात्मा न उत्पन्न होता है न मरता है वह न किसी से उत्पन्न हुआ न उससे कोई उत्पन्न होता है। यह अजन्मा नित्य, सनातन और अनादि है। वह शरीर के मारे जाने से नहीं मरता।

11. नित्य होने से जीव को अनेक बार भिन्न-भिन्न योनियों में उत्पन्न होना पड़ता है। इस पर पुनर्जन्म के विरोधी आक्षेप करते हैं कि पिछले जन्म की बात याद क्यों नहीं रहती ? बेशक याद नहीं रहती और उनका याद न रहना ही मानव के लिए हितकर है, मुख्यतः जीवन की शान्तिपूर्वक यात्रा के परिपेक्ष्य में। कई बार वह याद भी रहती है। अनेक बालकों के पिछले जन्म के वर्णनों से स्पष्ट हुआ है कि पिछले जन्म की स्मृति रहती है।

ये कतिपय विचार यहां रखे गए हैं। इन और ऐसे ही अन्य अनेक विचारों पर दृष्टिपात करने से आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता और उसके नित्यत्व में कुछ भी सन्देह नहीं रहता । एक बात यहां स्पष्टीकरण कर देना उचित होगा। कुछेक सज्जन जब उन्हें आत्मा की सत्ता मानने के लिए विवश होना पड़ता है तो यह प्रश्न

करते हैं कि आत्मा को सूक्ष्म से सूक्ष्म प्राकृतिक अवयवों (बुद्धि और मनादि) से किस प्रकार सम्बन्धित या जुड़ा हुआ कल्पना किया जा सकता है जिससे आत्मा उनसे काम ले सके। ऐसा प्रश्न करने वाले चाहते हैं कि उन्हें ज्ञान तन्तुओं के सदृश्य कोई सम्बन्ध आत्मा और प्रकृति के मध्यवर्ती बतला दिया जावे। परन्तु एक बात पर ध्यान नहीं देते और वह यह है कि आत्मा तो अप्राकृतिक है परन्तु बुद्धि आदि प्राकृतिक है। ऐसी अवस्था में प्राकृतिक सम्बन्ध के खोज की इच्छा दुरिच्छा मात्र है। आक्षेप का उत्तर यह है कि आत्मा अपनी शक्तियों ज्ञान–प्रयत्न में अप्राकृतिक होने से ऐसी असाधारणता रखता है जो प्राकृतिक वस्तुओं में नहीं पाई जाती और उन्हीं शक्तियों के अनुभव से बुद्धि मनादि को प्रभावित करके उनसे यथेष्ट काम लेता है। इस कल्पना में कोई वैज्ञानिक आपत्ति नहीं उठाई जा सकती क्योंकि विज्ञान प्रकृति से सम्बन्धित विद्या है और आत्मा अप्राकृतिक होने से उसके अन्वेषण की सीमा से बाहर है।

डॉ. कमल किशोर गोयनका

व्यक्ति की अपनी हानि तो होती है इसके साथ ही उसका दुर्व्यसन समाज को प्रभावित किए बिना नहीं रहता है। सदाशयता, सदाचारिता एवं सुख-शान्ति को ठेस पहुंचती है। मानव-मूल्यों पर कुठाराघात होता है।

कुछ लोगों की धारणा है कि मदिरापान से स्फूर्ति उत्पन्न होती है और सारे गम हवा हो जाते हैं किन्तु यह धारणा गलत है। मद्यपान का दुर्व्यसन शनैः-शनैः मनुष्य को पतन के गर्त में जा धकेलता है – ऐसे गर्त में जहां से बाहर निकलना बहुत कठिन होता है। घूसखोरी, भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता ये सब मद्यपान की देन है। मद्यपान करने वाले व्यक्ति को कर्त्तव्यों का ज्ञान भी नहीं रहता। एक बार लत पड़ जाने पर वह घर के बर्तनों सहित अपनी स्त्री के आभूषणों को बेचने में भी किसी प्रकार का संकोच नहीं करता। मद्यपान करने वाला व्यक्ति मद्य का पान नहीं करता अपितु यह कहा जाये कि अपनी पत्नी तथा बच्चों के रक्त का पान करता है तो अतिशयोक्ति न होगी।

शराब कितनी ही थोड़ी मात्रा में क्यों न पी जाए, यह दिमाग के स्नायु केन्द्रों को शून्य कर देती है। शराबखोरी एक ऐसी लानत है जो युद्ध, महामारी और दुर्भिक्ष तीनों विपदाओं से भयंकर है, क्योंकि इसकी तबाही का क्रम पीढ़ियों तक रहता है।

यद्यपि मदिरा विक्रय सरकार की आय का एक प्रमुख स्रोत है किंतु इससे देशवासियों के स्वास्थ्य पर बहुत कुप्रभाव पड़ता है। अनैतिकता, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी आदि बुराइयों में वृद्धि मदिरापान

20

मद्यपान निषेध

मद्यपान एक ऐसा दुर्व्यसन है जो समस्त समाज के लिए अभिशाप है। मदिरापान करने में कितने घर तबाह हुए हैं, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। हमारे धर्म शास्त्रों में मदिरापान को एक निन्दित कर्म की संज्ञा दी गई है। मदिरा के पान से व्यक्ति अपने होश खो बैठता है, उसका स्वास्थ्य गिर जाता है। मस्तिष्क का सन्तुलन खो जाता है। इसी कारण से मद्यप्रेमियों को नालियों की दुर्गन्ध में पड़े देखा जा सकता है।

निरन्तर मद्यपान करने से व्यक्ति की शारीरिक शक्ति का ह्रास हो जाता है तथा टी.बी., कैन्सर एवं अन्य भी घातक बीमारियां व्यक्ति के ऊपर आक्रमण कर देती हैं। मस्तिष्क की शक्ति का ह्रास तो हो ही जाता है क्योंकि कहावत है – एक स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क रहता है। ऐसा व्यक्ति कोई भी उपयोगी कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। अतः समाज के नाम पर एक कलंक ही बन जाता है। महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यों को दिए गए उपदेशों में कहा था – जिस राज्य में मदिरा आदर प्राप्त करेगी वहां दुर्भिक्ष पड़ेंगे, औषधियां निष्फल होंगी तथा विपत्तियों के बादल मंडराएंगे।'

समस्त बुराइयों का मूल मदिरापान है। मदिरापान करने वाले

7

आर्यसमाज क्या है ?

आर्यसमाज किसी धर्म, मत अथवा सम्प्रदाय का नाम नहीं अपितु यह सत्य सनातन वैदिक धर्म के शुद्ध रूप का प्रचार-प्रसार करने वाली संस्था है। एक क्रांति और सुधारक चेतना युक्त व्यवस्था है। जब भारत वर्ष अपना सच्चा स्वरूप तथा आदर्श परम्पराओं को भूलता जा रहा था। ऋषि मुनियों की पुण्य भूमि पर विदेशी शासकों ने यहां की संस्कृति और सभ्यता को नष्ट करना चाहा। जब देश का गौरव, वेदज्ञान और महापुरुषों के आदर्श चरित्र कलंकित होने लगे। भोली-भाली हिन्दु-जाति अविद्या के अंधकार में पड़ी लुट रही थी। उसी भयंकर अज्ञान और अन्धकार के क्षणों में प्रभु-प्रेरित महामानव का अविर्भाव हुआ। जो महर्षि दयानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। जिनका स्वयं कोई भी स्वार्थ नहीं था। उन्होंने स्वयं कहा कि मैं कोई नया सम्प्रदाय या मत बनाने नहीं आया हूँ। मैं तो जो वैदिक-धर्म के स्वरूप पर राख पड़ गई है उसे हटाने व साफ करने आया हूँ।

अतः आर्यसमाज कोई मजहब और सम्प्रदाय नहीं है। वह तो विचारधारा का एक आन्दोलन है, एक चिंतन है, जो मनाव को बताता है कि मनुष्य संसार में क्यों आया है? उसे क्या करना है? कहां जाता है ? हम कैसे ऊपर उठ सकते हैं ? अपने को कैसे सुखी बना सकते हैं ? ये सब बातें ही आर्यसमाज बताता है।

कौन-सी बातें छोड़नी हैं और कौन सी बातें ग्रहण करनी हैं। जो हमारे जीवन के लिए उपयोगी हैं। बुराइयों और बुरी आदतों से कैसे बच सकते हैं। इस विचारधारा में प्राणी-मात्र के कल्याण की भावना है। सारे संसार के उत्थान की चेतना है। पूरे विश्व को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ मानव बनने की इसी को चिन्ता है। यही सच्चे वैदिक धर्म का स्वरूप सामने रखता है।

आर्यसमाज ही 'मनुर्भव' – हे मानव तू मानव बन जा ! वेद के उपदेश को सृष्टि में बांट रहा है। मानव बनने का अमर संदेश दे रहा है। इस पवित्र वेदवाणी की रक्षा आर्यसमाज ही कर रहा है। आर्यसमाज खान-पान और रहन-सहन आदि पर विशेष बल देता है। आज हमारा खान-पान दूषित और हिंसक हो गया है। मांस, मछली तथा अन्डे आदि न खाने वाले अभक्ष्य पदार्थों को खाया जा रहा है, इसका परिणाम है कि हमारे मन-विचार आदि कर्म अपवित्र और दूषित हो रहे हैं। मन में वासनाएं भर रही हैं। इससे हम दुखों की ओर बढ़ रहे हैं। इन दुखों से छूटने का मार्ग ही आर्यसमाज बताता है कि हम कैसे दुखों से छुटकर सुखी रह सकते है।

आर्यसमाज किसी प्रकार के ढोंग, पाखण्ड, जादू-टोने, रुढ़ि, अन्धविश्वास और मूर्ति पूजा आदि में विश्वास नहीं रखता है। इस चिंतन में जो बात बुद्धिपूर्वक, तर्कसंगत और व्यवहारिक है, वही मान्य है। व्यर्थ की बातों में विश्वास नहीं है। परमात्मा सर्वव्यापक है। उसकी सत्ता सदैव विद्यमान है। वही आदि में था और अन्त में वही शेष रहता है। वह सर्वदेशीय है। वह जन्म-मरण, दुःख-सुख एवं हानि-लाभ से पृथक् है। केवल मात्र उसी एक परमात्मा की उपासना करनी चाहिए। अन्य देवी–देवताओं की पूजा करनी, अपना व्यर्थ में समय नष्ट करना हैं। ये देवी-देवता वास्तव में

वैसा ही औरों को भी समझा कीजिए। इसलिए आज तक जो कुछ हुआ सो हुआ। आँखें खोलकर सबके हानिकारक कर्मों को न कीजिए और न करने दीजिए। हम लोगों का यही काम है कि आप लोगों को भलाई और बुराई के कामों को जता देवें और आप लोगों का यही काम है कि पक्षपात छोड़ सबकी रक्षा और बढ़ती करने में तत्पर रहें।

हे महाराजाधिराज जगदीश्वर ! जो इनको कोई न बचावे तो आप इनकी रक्षा करने और हमसे कराने में शीघ्र उद्यत हूजिए।

11. मद्यपान

प्रश्न - मांस तो छूटा सो छूटा मद्य पीने में कोई भी दोष नहीं ?

उत्तर – मद्य पीने में भी वैसे ही दोष हैं जैसे कि मांस खाने में। मनुष्य मद्य पीने से नशे के कारण नष्ट बुद्धि होकर अकर्त्तव्य कर लेता और कर्त्तव्य को छोड़ देता है। न्याय का अन्याय और अन्याय का न्याय आदि विपरीत कर्म करता है और मद्य की उत्पत्ति विकृत पदार्थों से होती है और वह मांसाहारी अवश्य हो जाता है। इसलिए उसके पीने से आत्मा में विकार उत्पन्न होते हैं और जो मद्य पीता है वह विद्यादि शुभ गुणों से रहित होकर उन दोषों में फँसकर अपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, फलों को छोड़कर पशुवत् आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि कर्मों में प्रवृत्त होकर मनुष्य अपने जन्म को व्यर्थ कर देता है। इसलिए नशा एवं मदकारक द्रव्यों का सेवन कभी न करना चाहिए।

रक्षक - जो कोई मांस न खावे, न प्रेरणा और अनुमति आदि देवे तो पशु कभी न मारे जावें। मनुस्मृति के अनुसार मारने की आज्ञा देने वाला, मांस काटने वाला, पशु को मारने वाला, मांस के लिए पशु को खरीदने तथा बेचने वाला, पकाने-वाला, परोसने वाला तथा खाने वाला, ये आठ मनुष्य घातक, हिंसक अर्थात् पापी होते हैं।

भला जिनके दूध आदि खाने-पीने में आते है। वे माता-पिता के समान माननीय क्यों न होने चाहिए। इसलिए हे धार्मिक सज्जन लोगो ! आप इन पशुओं की रक्षा तन, मन और धन से क्यों नहीं करते ? हाय ! ! बड़े शोक की बात है कि जब हिंसक लोग गाय–बकरे आदि पशु और मोर आदि पक्षियों को मारने के लिए ले जाते हैं तब वे अनाथ तुम हमको देखके राजा और प्रजा पर बड़े शोक प्रकाश्ति करते हैं कि देखो ! हमको बिना अपराध बुरे हाल से मारते हैं। हम इसीलिए पुकारते हैं कि हमको आप लोग बचावें। हम तुम्हारी भाषा में अपना दुख नहीं समझा सकते और आप लोग हमारी भाषा नहीं जानते, नहीं तो क्या हमको कोई मारता तो हम भी आप लोगों के सदृश अपने मारने वालों को न्यायव्यवस्था से फाँसी पर न चढ़वा देते ?

सुनो बन्धुवर्गो! तुम्हारा तन, मन, धन, ग्राम आदि की रक्षा रूप परोपकार में न लगे तो किस काम का है? देखो परमात्मा का स्वभाव कि जिसने सब विश्व और सब पदार्थ परोपकार के लिए ही रचे हैं वैसे तुम भी अपना तन, मन, धन परोपकार ही के लिए अर्पण करो। ध्यान देकर सुनो कि जैसा दुःख अपने को होता है

भगवान का रूप नहीं हैं, क्योंकि जिसे हम भगवान कहते हैं वे तो सर्वज्ञ और निराकार है। उसकी कोई मूर्ति, रूप एवं आकृति नहीं है । आज हम लोग अनेक प्रकार के मत भगवान की मूर्तियां बनाकर पूजा करते हैं। ये वास्तव में अविद्या और अज्ञान है। हमने सच्चे भगवान के स्वरूप को जाना और पहचाना ही नहीं। हमने कभी प्रयास ही नहीं किया कि भगवान तो घट-घट में व्यापक है फिर बाहर खोजते फिर रहे हैं ? क्यों न अपने अन्दर बैठे प्रभु को जानें और मानें।

आर्यसमाज परमात्मा और आत्मा के बीच में किसी मध्यस्थ या बिचौलिए को स्वीकार नहीं करता है। जैसे बेटा अपने माता-पिता की गोद में बैठने के लिए किसी से पूछता नहीं है। वैसा ही वह परमपिता परमात्मा हमारा माता-पिता है। उसके पास जाने और मिलने के लिए बीच में किसी आदमी की जरूरत नहीं है। जैसे कि आजकल, पीर, पैगम्बर, दूत और पुजारी भगवान के बिचौलिए बनकर भोली-भाली जनता को ठग रहे हैं, उन्हें गुमराह कर रहें हैं। उन्हें सच्चाई से दूर भटका रहे हैं।

आर्य समाज परमेश्वर के सच्चे स्वरूप को दर्शाता है। उसकी अनन्त महिमा की ओर मानव को जाने के लिये प्रेरित करता है। उसे जानने और मानने के लिए विचार और तर्क देता है। परमात्मा की सत्ता है इसके अनेक प्रमाण बताता है।

आर्यसमाज का चिंतन पूर्ण रूप से वैज्ञानिक, व्यवहारिक, बुद्धि संगत एवं उपयोगी है। यह चिंतन आज के मानव के अधिक निकट है क्योंकि आज विज्ञान का युग है। हर मनुष्य बुद्धि की कसौटी पर प्रत्येक वस्तु को देखता और परखता है। व्यर्थ के अन्धविश्वास में नहीं पड़ता है। वैदिक विचारधारा भी यही कहती है कि जो वस्तु सृष्टिक्रम और बुद्धि संगत हो उसे मानो, व्यर्थ की

बातों को छोड़ दो, इसी में कल्याण है।

आर्यसमाज का चिंतन, मनन, मान्यताएं और सन्देश बिलकुल स्पष्ट सुलझे हुए तथा मानव-मात्र के कल्याणकारी हैं।

आर्यसमाज क्या करता है ?

वैदिक धर्म के पुनरुद्धार, प्रचार एवं वैदिक संस्कृति के प्रसार के लिए महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना का लक्ष्य बनाया। जिसमें शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक एवं पारलौकिक उत्थान की व्यवस्था रखी थी। आर्यसमाज आरम्भ से ही अपने कार्य और कर्तव्य के प्रति जागरूक रहा है। इसी कारण अल्प समय में ही इतनी ख्याति और उपलब्धि हुई है। आर्यसमाज ने प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए गए हैं। संक्षेप में विवरण इस प्रकार है –

1. आर्यसमाज ने धर्म के नाम पर पाखण्ड, आडम्बर और अनेक देवी-देवताओं का विरोध करके धर्म का सच्चा स्वरूप दिखाया और धर्म को आचरण का विषय बनाया। इनसे लोगों का कल्याण हुआ। धर्म को व्यवहार का रूप देकर जन-जन तक पहुंचाया।

2. आर्यसमाज ने वेदों को ईश्वरीय ज्ञान बताया। जीव-मात्र के कल्याण के लिए परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में वेदों की उत्पत्ति की। वेदों को पढ़ने का सबको अधिकार है। वेद सभी को 'जिओ और जीने दो' का उपदेश देते हैं।

3. आर्यसमाज ने ईश्वर को सर्वज्ञता और जीव को अल्पज्ञ होने का चिंतन दिया। इससे परमात्मा जन्म-मरण, सुख-दुख,

8. कृतज्ञता

हिंसक - अच्छा तो यही बात है तो जब तक पशु काम में आवें तब तक उनका मांस न खाना चाहिए। जब बूढ़े हो जावें या मरजावें तब खाने में कुछ भी दोष नहीं ।

रक्षक - जैसे दोष उपकार करनेवाले माता-पिता आदि के मारने और उनका मांस खाने में हैं, वैसे उन पशुओं की सेवा न कर मारके मांस खाने में है। और जो मरे पश्चात् उनका मांस खावे तो उनका स्वभाव हिंसक होने से अवश्य हिंसक होके हिंसारूपी पाप से कभी न बच सकेगा। इसलिए किसी भी अवस्था में मांस न खाना चाहिए।

9. अनुपकारी पशु

हिंसक - जिन पशुओं और पक्षियों अर्थात् जंगल में रहने वालों से किसी का उपकार नहीं होता और हानि होती है, उनका मांस खाना वा नहीं खाना चाहिए ?

रक्षक - न खाना चाहिए । क्योंकि वे भी उपकार में आ सकते हैं। देखो 100 भंगी जितनी शुद्धि करते हैं, उनसे अधिक एक सुअर वा मुर्गा आदि, मोर आदि पक्षी सर्प आदि की निवृत्ति करने से पवित्रता और अनेक उपकार करते हैं

10. खरीदा हुआ मांस

हिंसक - जो मनुष्य पशु को मारके मांस खावें उनको पाप होता है और जो बिकता मांस मूल्य से लें उनको पाप नहीं होना चाहिए।

5. पशुवृद्धि का भय ?

हिंसक - जो कोई मांस न खावे तो पशु इतने बढ़ जाएँ कि पृथिवी पर भी न समावें। और इसलिए ईश्वर ने उनकी उत्पत्ति भी अधिक की है।

रक्षक - देखो ! मनुष्य का मांस कोई नहीं खाता, पुनः क्यों न बढ़ गये ? और इनकी अधिक उत्पत्ति इसलिए है कि एक मनुष्य के पाल-व्यवहार में अनेक पशुओं की अपेक्षा है।

6. अधर्म ?

हिंसक - हमारे मत में मांस खाना अधर्म नहीं है।

रक्षक - जिस-जिस व्यवहार से दूसरों की हानि हो, वह-वह अधर्म और जिस-जिस व्यवहार से उपकार हो, वह धर्म कहाता है तो लाखों के सुखकारक पशुओं का नाश करना अधर्म और उनकी रक्षा से लाखों को सुख पहुँचाना धर्म क्यों नहीं मानते ? जब एक आदमी की हानि करने से चोरी आदि कर्म पाप में गिनते हो तो गवादि पशुओं को मारके बहुतों की हानि करना महापाप क्यों नहीं ?

7. स्वभाव-दोष

मांसाहारी पुरुषों में दया आदि उत्तम गुण होते ही नहीं किन्तु वे स्वार्थवश होकर दूसरे की हानि करके अपना प्रयोजन सिद्ध करने में ही सदा रहते हैं।

हानि–लाभ आदि से पृथक है। जीव अपने कर्मों के आधार पर संसार में आता है। कर्मों से ही ऊपर उठता है, कर्मों से ही पतन को प्राप्त होता है। यह आर्यसमाज का महत्वपूर्ण योगदान है।

4. स्वर्ग और नरक का वास्तविक स्वरूप बताया। गंगा-स्नान, पूजा-पाठ कीर्तन आदि से मनुष्य कर्मफल से बच नहीं सकता है। जो कर्म क्या है उसका फल अच्छा या बुरा अवश्य ही भोगना पड़ेगा।

5. आर्यसमाज ने यज्ञों का सच्चा रूप सामने रखा। इससे लोगों में फैली भ्रान्तियां दूर हुई। पशुबलि और नरबलि जैसी क्रूर और हिंसक बातें दूर हुई। लोगों में यज्ञों के प्रति श्रद्धा बढ़ी। यज्ञ का प्रचार और प्रसार हुआ।

6. आर्यसमाज ने ब्रह्मचर्य के महत्व और प्रभाव का प्रचार किया। बाल-विवाह, अनेमल-विवाह और बहु-विवाह का विरोध किया। विवाहों में कुरीतियों का खण्डन करके वैदिक आदर्श की स्थापना की।

विवाह संबंध का आदर्श गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर बताया। जाति जन्म से और वर्ण-व्यवस्था कर्म के आधार पर रखी।

7. आर्यसमाज ने अनाथों, असहायों, विधवाओं और दीन-हीन दुःखी जनों की सहायता की। उनके लिए अनाथालय, वनिताश्रम, विधवाश्रम खोले गये।

8. स्त्रियों के अधिकारों की आर्यसमाज ने दिल खोलकर वकालत की है। उन्हें पढ़ने-पढ़ाने यज्ञोपवीत और यज्ञ करने-कराने का अधिकार दिलाया। पर्दा-प्रथा का खुलकर विरोध किया।

9. शिक्षा के प्रचार और प्रसार में आर्यसमाज की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। शिक्षा के प्रसार के लिए अनेक गुरुकुल, संस्कृत पाठशालाएं एवं स्कूल-कॉलेज खोले गए। बिना किसी भेद-भाव के सभी को समान भाव से इन संस्थाओं में शिक्षा मिली। जिसके उदाहरण समाज में अनेक व्यक्ति हैं ।

10. आर्यसमाज ने निष्काम सेवा का पाठ पढ़ाया। जीवित माता–पिता और गुरुजनों की सेवा ही श्राद्ध है। सभी के मंगल और कल्याण की भावना ही मानवता का नाम है।

11. आर्यसमाज ने खान-पान के विषय में स्पष्ट मत दिया है मांस-मदिरा, अण्डा, मछली आदि अभक्ष्य पदार्थ खाने से मनुष्य तामसिक बनता है। परमात्मा ने मनुष्य की रचना और स्वभाव मांसभक्षी नहीं बनाया । अतः इन न खाने योग्य पदार्थों को छोड़ देना ही कल्याणकारी हैं

12. आर्यसमाज ने लोगों को अपनी भारतीय संस्कृति, सभ्यता और गौरवपूर्ण सम्पदा से परिचित कराया। हमारे प्राचीन पूर्वज, महान ग्रन्थ, आदर्श परम्पराएं, मर्यादाएं और शिष्टाचार कितने उन्नत और प्रेरक है, यह आर्यसमाज ने समूची मानवता के सामने रखा। हमारे पूर्वज बाहर से नहीं आए थे। इसी धरती पर ज्ञान और सभ्यता का प्रकाश हुआ था। यहीं से सभी ने ज्ञान और चरित्र का पाठ सीखा था।

13. आर्यसमाज ने सबसे पहले नारा दिया था कि "स्वराज्य प्राप्ति हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।" स्वदेशी वस्तुओं को प्रोत्साहन दिया। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया। आर्यभाषा हिन्दी को अपनाकर उसको राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित कराया।

14. आर्यसमाज ने अनेक दुर्लभ ग्रन्थों का प्रकाशन कराया।

खाते और फलादि खाकर निर्वाह करते हैं वैसे ही तुम भी किया करो। इसलिए मनुष्यों को उचित है कि मांस खाना सर्वथा छोड़ दें।

3. मांस से बल भी नहीं बढ़ता

हिंसक – जो मांसाहारी पशु और मनुष्य हैं वे बलवान् और जो मांस नहीं खाते वे निर्बल होते हैं, इसलिए मांस खाना चाहिए।
रक्षक- देखो, सिंह मास खाता और सुअर व अरणा भैंसा मास कभी नहीं खाता। किन्तु सिंह उनसे डरकर अलग सरक जाता है और वह सिंह से नहीं डरता। मांस छिलके के समान और दूध–घी सार रस के तुल्य हैं। इसको जो युक्तिपूर्वक खावें तो मांस से अधिक गुण और बलकारी होता है फिर मांस का खाना व्यर्थ और हानिकारक, अन्याय, अधर्म और दुष्ट कर्म क्यों नहीं है?

4. आपातकाल

हिंसक - जिस देश में सिवाय मांस के कुछ नहीं मिलता, वहाँ व आपतकाल में अथवा रोग-निवृत्ति के लिए मांस खाने में दोष नहीं होता।

रक्षक - यह आपका कहना व्यर्थ है क्योंकि जहाँ मनुष्य रहते हैं वहाँ पृथिवी अवश्य होती है। जहाँ पृथिवी है वहाँ खेती वा फल-फूल आदि होते हैं और जहाँ कुछ भी नहीं होता वहाँ मनुष्य भी नहीं रह सकते और आपातकाल में भी अन्य पदार्थों से निर्वाह कर सकते हैं; जैसे मांस के खाने वाले करते हैं और बिना मांस के रोगों का निवारण भी औषधियों से यथावत् होता है। इसलिए मांस खाना अच्छा नहीं

इसके पश्चात् महर्षि जी ने हिंसक-रक्षक संवाद के रूप में ऐसे अनेक प्रश्नों का समाधान किया है जो कि मांसाहारियों द्वारा उठाए जा सकते हैं। यथा –

1- पशु मांस खाने के लिए नहीं रचे

हिंसक - ईश्वर ने सब पशु आदि सृष्टि मनुष्य के लिए रची है और मनुष्य अपनी भक्ति के लिए, इसलिए मांस खाने में दोष नहीं हो सकता ।

रक्षक - भाई सुनो ! तुम्हारे शरीर को जिस ईश्वर ने बनाया है क्या उसी ने पशु आदि के शरीर नहीं बनाये हैं ? जैसे तुम्हारा चित्त उनके मांस पर चलता है वैसे ही सिंह, गृध्र आदि का चित्त भी तुम्हारे मांस खाने पर चलता है तो क्या तुम हिंसक पशुओं के खाने के लिए हो ?

2. मनुष्य आकृति से भी हिंसक नहीं

हिंसक - ईश्वर ने पुरुषों के दाँत कैसे पैने मांसाहारी पशुओं के समान बनाये हैं इससे हम जानते हैं कि पशओं का मांस खाना उचित है।

रक्षक - जो दाँत का दृष्टान्त लेते हो तो बन्दर के दाँतों का दृष्टान्त क्यों नहीं लेते ? देखो बन्दरों के दाँत सिंह, बिल्ली आदि के समान हैं और वे मांस कभी नहीं खाते। मनुष्य और बन्दर की आकृति भी बहुत-सी मिलती है जैसे मनुष्यों के हाथ पग और नख आदि होते हैं वैसे ही बन्दरों के भी हैं इसलिए परमेश्वर ने मनुष्यों को बन्दरों के दृष्टान्त से उपदेश किया कि जैसे बन्दर मांस नहीं

अनेक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से दूर-दूर तक वैदिक धर्म का प्रचार किया। अनेक विद्वान्, पुरोहित, उपदेशक और लग्नशील कार्यकर्ता तैयार किए।

15. आर्यसमाज द्वार सबका द्वार है। यहां सबके लिए स्थान है। इसकी मान्यताएं और आदर्श मानव-मात्र के लिए स्वस्ति की कामना लिए हुए हैं।

संक्षेप में ऊपर आर्यसमाज के कार्यों की चर्चा की है। इसकी अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं। इसका आधार ठोस है। इसका आचार-विचार सत्य है। इसका प्रवर्तक कठोर सत्यव्रती है। इसका चिंतन मोक्षमार्गी है। इसके सिद्धान्त बहुजन हिताय के लिए है। यह विचारधारा प्राणी-मात्र के लिए सुख-शान्ति और आनन्द चाहती है।

यदि हम अपने जीवन में इन उच्च आदर्शों को ग्रहण कर लें। इनको चरित्र में उतार लें। अपने व्यवहार में बदल लें, तो देखेंगे कि हमारा जीवन बुराइयों से दूर हो जाएगा। अच्छे विचारों से भर जाएगा। बुरी संगत से दूर हटने लगेंगे। बुरी आदतों से स्वतः ही घृणा होने लगेगी। बुद्धि में श्रेष्ठ विचार आयेंगे। मन में संकल्प होगा। तभी अच्छे मार्ग की ओर चल पड़ेंगे। कठिनाइयां अपने आप मार्ग से हटने लगेंगी।

जीवन प्रसन्नता से भर जाएगा। चारों ओर यश, कीर्ति फैलेगी। सभी श्रद्धा, प्रेम और आदर से आदर्श जीवन की प्रशंसा करेंगे।

– डॉ. महेश वेदालंकार

8

जीवन का उद्देश्य

जैसे कोई लकड़ी का टुकड़ा नदी की धारा में पड़कर बहता चला जाता है, कभी सीधा, कभी टेढ़ा, पानी के थेपेड़े खाता हुआ कहीं जाकर लगता है। वैसे ही जिस मनुष्य ने अपने जीवन में कोई उद्देश्य स्थिर नहीं किया है, उसकी दुर्गति होती है। आज हमारे देश में ऐसे लोगों की संख्या असंख्य है। जिनके सामने जीवन का कोई उद्देश्य ही नहीं है। क्या ऐसे लोग अपने जीवन से संसार के सामने कोई आदर्श उपस्थित कर सकते हैं ? जिस व्यक्ति के जीवन का कोई लक्ष्य ही नहीं उसके जीवन का कोई ठिकाना नहीं है।

सामान्य अशिक्षित लोगों की बात तो अलग है, स्कूल-कालेज के विद्यार्थियों से पूछा जाए कि तुम्हारे जीवन का लक्ष्य क्या है ? तो वे चुप रह जायेंगें, भली-भांति उत्तर न दे सकेंगे ? क्योंकि कभी उन्होंने जीवन के उद्देश्य के बारे में सोचा नहीं है। अधिकांश विद्यार्थी पढ़ने के बाद नौकरी या व्यापार करने का ही जीवन का उद्देश्य मान लेते हैं। कुछ इसलिए पढ़ते हैं कि अच्छी शादी हो जाएगी, कुछ इसलिए पढ़ते हैं कि समाज इन्हें पढ़ाई के बल से सम्मान देगा। सबका उद्देश्य मात्र धन कमाना होता है। इसी में

घास, तृण, पत्ते, फल, फूल आदि खावें और सार दूध आदि अमृतरूपी रत्न देवें, (2) हल-गाड़ी आदि में चलके अनेकविध अन्न आदि उत्पन्न करके बुद्धि-बल-पराक्रम को बढ़ा के नीरोगता करें, (3) पुत्र-पुत्री और मित्र आदि के समान पुरुषों के साथ विश्वास और प्रेम करें (4) जिनके मरने पर चमड़ा भी कंटक आदि से पैरों की रक्षा करे (5) अपने स्वामी की रक्षा के लिए तन, मन लगावें (6) जिनका सर्वस्व राजा और प्रजा आदि मनुष्यों के सुख के लिए है, (7) जिनके मल-मूत्र में भी खेती के लिए उत्तम खाद मिलता है, इत्यादि शुभगुणयुक्त सुखकारक पशुओं के गले छुरों से काटकर जो अपना पेट भर सब संसार की हानि करते हैं क्या संसार में उनसे भी अधिक कोई विश्वासघाती, अनुपकारी, दुःख देनेवाले और पापीजन होंगे ? इस प्रकार उपयोगी पशुओं की दुर्दशा एवं मनुष्यों की कृतज्ञता से महर्षि का हृदय द्रवीभूत हो उठा, उनकी मनः स्थिति निम्न शब्दों से स्पष्ट है –

हे मांसाहारियो ! तुम जब कुछ काल के पश्चात् पशु न मिलेंगे तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे वा नहीं ? हे परमेश्वर ! तू क्यों इन पशुओं पर जो कि बिना अपराध मारे जाते हैं, दया नहीं करता? क्या उन पर तेरी प्रीति नहीं है ? क्या उनके लिए तेरी न्याय सभा बन्द हो गयी? क्यों उनकी पीड़ा छुड़ाने पर ध्यान नहीं देता और उनकी पुकार नहीं सुनता? क्यों इन मांसाहारियों के आत्माओं में दया प्रकाश कर निष्ठुरता, कठोरता, स्वार्थपन और मूर्खता आदि दोषों को दूर नहीं करता जिससे ये इन बुरे कामों से बचें।

है। इसी प्रकार अन्य दूध देनेवाले पशुओं के दूध से भी अनेक प्रकार के सुख लाभ होते हैं।

(5) अन्य पशुओं की उपयोगिता – जैसे ऊँट-ऊँटनी से लाभ होते हैं वैसे ही घोड़ा, घोड़ी और हाथी आदि से अनेक कार्य सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार सुअर, कुत्ता, मुर्गा, मुर्गी और मोर आदि पक्षियों से भी अनेक उपकार होते हैं। जो पुरुष हरिण और सिंह आदि पशु और मोर आदि पक्षियों से भी उपकार लेना चाहें तो ले सकते हैं।

(6) पशु-वध वेद विरुद्ध भी है – यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र ही में परमात्मा की आज्ञा है कि 'यजमानस्य पशुन् पाहि' हे पुरुष ! तू इन पशुओं को कभी मत मार। इसीलिए ब्रह्मा से लेकर आज पर्यन्त आर्य लोग पशुओं की हिंसा में पाप और अधर्म समझते थे और अब भी समझते हैं।

(9) पशु-हत्या से राजा-प्रजा का नाश – इससे यह ठीक है कि गौ आदि पशुओं के नाश से राजा और प्रजा का भी नाश हो जाता है क्योंकि जब पशु न्यून होते हैं तब खेती अदि कार्यों की भी घटती होती है। देखो! इसी से जितने मूल्य से जितना दूध और घी आदि पदार्थ तथा बैल आदि पशु 800 वर्ष के पूर्व मिलते थे उतना दूध, घी और बैल आदि पशु इस समय बीस गुणे मूल्य में भी नहीं मिलते क्योंकि 800 वर्ष के पीछे इस देश में गवादि पशुओं को मारने वाले मांसाहारी विदेशी मनुष्य आ बसे हैं। वे उन पशुओं के हाड़-मांस तक भी नहीं छोड़ते।

(10) पशु-हत्या अधर्म भी है – देखिए (1) जो पशु निःसार

अपना कर्त्तव्य पूरा समझते हैं यह जीवन का कितना छोटा उद्देश्य है। कितना सस्ता बना लिया जीवन को ।

कुछ लोग अपने जीवन का उद्देश्य खाओ–पीओ और मौज करो के लक्ष्य को ही जीवन का उद्देश्य समझते हैं। दिन रात इसी भाग-दौड़ में भटकते रहते हैं। विषय-वासना और इन्द्रियों के सुख के साधन जुटाते रहते हैं।

अगर यही जीवन का सत्य होता, तो धनवान सुखी होते ? क्योंकि उनके पास तो किसी प्रकार की कमी नहीं है। धन से सुख का सामान तो खरीदा जा सकता है सुख नहीं खरीदा जा सकता। धन से रोटी तो खरीदी जा सकती है पर भूख नहीं। धन से दवाई तो खरीदी जा सकती है स्वास्थ्य नहीं, धन से गद्दा तो मिल सकता है, पर नींद नहीं मिलगी। इन बातों से सिद्ध होता है कि जीवन का अर्थ केवल धन कमाना ही नहीं है। जीवन का अर्थ इससे कहीं आगे है। धन तो जीवन में साधन है, जिसके द्वारा जीवन-यात्रा की आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त कर सकते हैं।

जीवन अमूल्य है। जीवन दैवीय सम्पदा है। चौरासी लाख योनियों में सबसे बड़ा मानव-जीवन का है। इसका एक-एक पल अनमोल है। इसकी कीमत उससे पूछो जो मृत्यु शैया पर पड़ा है। डाक्टरों से दीन-हीन बनकर कुछ क्षण के लिए जीवन मांग रहा है। किन्तु फिर भी मिलता नहीं है। जीवन तो उल्लास है, उमंग है। परमात्मा का वरदान है। कठिनाइयां, संघर्ष, निराशाएँ, जो भी जीवन के मार्ग में आयें उन्हें ठोकर मारकर भगा दो। साहस,

शक्ति, दृढ़ता और धैर्य से आगे बढ़ो।

जो मनुष्य अपने जीवन में कोई उद्देश्य लेकर चले, उन्होंने अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया। कोई साहित्यकार बनकर और कोई कलाकार बनकर अभीष्ट तक पहुंचा। कोई वैज्ञानिक बना, तो किसी ने राजनीति को अपना क्षेत्र बनाया ।

एक छोटे से बालक का दृष्टांत बड़ा ही प्रेरक है। जब वह छोटी कक्षा में पढ़ता था। तभी से उसने अपना लक्ष्य निश्चित कर लिया था। उसका लक्ष्य था कि मैं जिस विद्यालय में पढ़ता हूं, उसका प्रिंसिपल बनूंगा। उसने अपनी हार्दिक इच्छा को स्मरण रखने के लिए अंग्रेजी का मोटा 'पी अक्षर अपनी सीट के सहारे की दीवार पर लिख लिया था। फिर उसने यह अक्षर बैठने की सीट पर, डेस्क पर, कापी में, पुस्तक में, जगह-जगह पर लिख दिया। ऐसा करने से उसे अपने उद्देश्य का सदैव स्मरण बना रहता था। जब उसके मित्रों और सहयोगियों को इसका पता चला तो वे उसका खूब मजाक बनाते थे और उसको प्रिंसिपल के नाम से पुकारते थे।

परन्तु उस बालक ने इस बात की तनिक भी परवाह नहीं की। वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति में दिन-रात परिश्रम करने लगा उसके मन में संकल्प था। कर्म में उत्साह था। शरीर में पुरुषार्थ की उमंग थी। एक दिन वह निश्चय ही उसी विद्यालय का प्रिंसिपल बना। सभी उसके साथी और विरोधी छात्र उसके परिश्रम और लग्न से प्रभावित हुए।

लाख, दस हजार चार सौ चालीस) मनुष्यों का पालन एक बार के भोजन से होता है।

अब छः गायों की पीढ़ी दर पीढ़ियों का हिसाब लगाकर देखा जाए तो असंख्य मनुष्यों का पालन हो सकता है और इसके मांस से अनुमान है कि केवल अस्सी मांसाहारी मनुष्य एक बार तृप्त हो सकते हैं । देखो ! तुच्छ लाभ के लिए निरपराध प्राणियों को मार असंख्य मनुष्यों की हानि करना महापाप क्यों नहीं ?

(3) गाय क्यों सर्वोत्तम है ? - जितना गाय के दूध और बैलों के उपयोग से मनुष्यों को सुखों का लाभ होता है उतना भैंसों के दूध और भैंस से नहीं। क्योंकि जितने आरोग्यकारक और बुद्धिवर्द्धक आदि गुण गाय के दूध में और बैलों में होते हैं उतने भैंस के दूध और भैंसे आदि में नहीं होते। इसलिए आर्यों ने गाय सर्वोत्तम मानी है।

(4) भेड़-बकरी की उपयोगिता–गाय की भाँति एक बकरी के सम्पूर्ण जीवन के दूध का हिसाब लगाकर महर्षि कहते हैं कि उससे 2,160 (दो हजार एक सौ साठ) मनुष्यों का एक बार के भोजन से पालन होता है। इसी बकरी की बच्चियों के जन्मभर के दूध से 25,920 (पच्चीस हजार नौ सौ बीस) मनुष्यों का एक बार का भोजन हो सकता है जबकि इन बकरियों के मांस से एक बार में 30–40 मनुष्य ही तृप्त हो सकेंगे।

भेड़ा-भेड़ी के ऊन के वस्त्रों से मनुष्यों को बड़े-बड़े सुखलाभ होते हैं। यद्यपि भेड़ी का दूध बकरी के दूध से कुछ कम होता है तथापि बकरी के दूध से उसके दूध में बल और घृत अधिक होता

विनाश न करें कि जिससे दुग्ध आदि पदार्थों और खेती आदि क्रियाओं की सिद्धि से युक्त होकर सब मनुष्य आनन्द में रहें।

गौ आदि पशुओं की रक्षा में कारण

(1) कोई भी पशु निष्प्रयोजन नहीं है – सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ने इस सृष्टि में जो-जो पदार्थ बनाये हैं वे निष्प्रयोजन नहीं, किन्तु एक-एक वस्तु अनेक प्रयोजनों के लिए रची है। इसलिए उनसे वे ही प्रयोजन लेना न्याय अन्यथा अन्याय है। क्या जिन-जिन प्रयोजनों के लिए परमात्मा ने जो-जो पदार्थ बनायें हैं उन-उनसे वे-वे प्रयोजन न लेकर उनको प्रथम ही विनष्ट कर देना सत्पुरुषों के विचार में बुरा कर्म नहीं है ? पक्षपात छोड़कर देखिए, गाय आदि पशु और कृषि आदि कर्मों से सब संसार को असंख्य सुख देते है वा नहीं ।

(2) आर्थिक दृष्टि से गाय की उपयोगिता – महर्षि ने भारत वर्ष की आर्थिक स्थिति का आधार गाय को माना है। उन्होंने प्रमाणसहित हिसाब लगाकर बताया है कि 25740 (पच्चीस हजार सात सौ चालीस) मनुष्य एक गाय के जन्मभर के दूधमात्र से एक बार तृप्त हो सकते हैं। यदि इस गाय के उत्पन्न होने वाली बछियाओं का हिसाब लगाया जाए तो उनके दूध से 1,54,440 (एक लाख, चौवन हजार, चार सौ चालीस) मनुष्यों का पालन हो सकता है। इसी एक गाय के बछड़ों के द्वारा उत्पन्न अन्न से 2,56,000 (दो लाख छप्पन हजार) मनुष्यों का एक बार का भोजन हो सकता है। इस प्रकार एक गाय की पीढ़ी के ही बछड़े-बछियाओं से उत्पन्न दूध तथा अन्न से 4,10,440 (चार

बच्चों ! जब तुम अपनी छिपी शक्तियों को जान लोगे। सोई हुई शक्तियों को जाग्रत कर लोगे तो तुम महान् बन जाओगे। जिस भी दिशा में कदम बढ़ाओगे सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी। संस्कृत के महान कवि कालिदास का नाम तुमने सुना होगा। वह व्यक्ति इतना मूर्ख था कि जिस डाल पर बैठा था उसको काट रहा था। विद्योत्तमा नाम की एक विदुषी स्त्री से उसका विवाह हुआ । एक दिन सामने से जाते हुए ऊँट को देखकर कालिदास के मुख से 'उष्ट्र' के स्थान पर 'उट्र' शब्द सुनकर विद्योत्तमा को अत्यन्त दुःख हुआ और उसने उन्हें कहा कि स्वामी तुम जाओ और तभी लौटो जब विद्या ग्रहण कर लो। पत्नी की बात उनके ह्दय में चुभ गयी। विद्या के लिए कठोर साधना की। पूर्ण विद्वान बनकर लौटे। घर का दरवाजा खटखटाया और जब अन्दर से विद्योत्तमा ने पूछा कि "अस्ति कश्चिद् वाग्विशैषः" क्या वाणी में कोई विशेषता आई ? कालिदास ने 'अस्ति' 'कश्चिद्', 'वाक्' और 'विशेष' इन शब्दों को लेकर कुमारसंभव, मेघदूत, रघुवंश और अभिज्ञान शाकुन्तल नामक ग्रन्थों का निर्माण किया। आज भी कालिदास संसार में कविकुल गुरु के नाम से सर्वविदित है। तुलसीदास ने अपने को पहिचान कर रामचरितमानस की रचना की।

संसार में जो भी अमर हुआ, उसके मूल जीवन में संकल्प, लग्न और कर्त्तव्य भावना रही है। उन्होंने अपने लक्ष्य को सदैव सामने रखा है। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सब कुछ छोड़ दिया। तभी वे जीवन में सफल हुए।

जीवन की गति नदी की धारा की तरह है। पता नहीं किधर मुड़ जाय। इसलिए तुम जिस लक्ष्य पर पहुंचना चाहते हो, उसी का हर पल ध्यान रखो। बाकी को छोड़ दो। अर्जुन की दृष्टि चिड़िया की आंख पर थी। इसीलिए उसका निशाना ठीक बैठा। अन्य भाइयों की दृष्टि किसी की पेड़ पर, किसी की डाली पर, तो किसी की पत्तों पर थी। सभी अपने निशाने में असफल रहे। सफलता का मूल मन्त्र यही है कि अपने जीवन के लक्ष्य को पहले निश्चित कर लो। तुम जीवन में क्या बनना चाहते हो। फिर उसी के प्रयास में जीवन की सारी शक्ति लगा दो। सफलता तुम्हारे चरणों में होगी। जो व्यक्ति चौराहे पर खड़ा सही निर्णय नहीं कर पा रहा है कि मैंने जाना किधर है ? वह कहीं भी नहीं पहुंच सकता है। वह जीवन भर भटकता रहेगा। जीवन भर असफलता का मुँह देखता रहेगा। संसार में असंभव कुछ भी नहीं है, प्राप्त करने की हिम्मत चाहिए। यह तुम्हारे पर निर्भर करता है कि तुम क्या बनने का संकल्प लेते हो। संकल्प में शक्ति है। शक्ति से ही कर्म में सफलता मिलती है। आलसी, प्रमादी, कल्पनाजीवी बनकर पड़े रहने से कुछ नहीं मिलेगा। संसार वीरों की पूजा करता है। जो अपने कर्म और उद्देश्य के लिए प्राणों की बाजी लगा देते हैं,दुनिया उनकी मूर्तियां बनाकर पूजती है।

खाद खेती में न डाले जाएँ तो फसल बिल्कुल नहीं होगी तथा इनसे भूमि की उपजाऊ शक्ति भी कम होती जा रही है।

गाय की इतनी महत्ता को देखते हुए ही महर्षि दयानन्द ने गो-वध के खिलाफ आन्दोलन किया था। उन्होंने न केवल गौकरुणानिधि पुस्तक ही लिखी, अपितु गोवध के विरोध में एक करोड़ व्यक्तियों के हस्ताक्षर कराकर एक माँगपत्र भी ब्रिटिश सम्राज्ञी विक्टोरिया को दिया था। परतन्त्र भारत में महात्मा गांधी कहते थे कि देश के स्वतन्त्र होने पर पाँच मिनट में कलम की नोक से गो-वध बन्द कर दिया जाएगा। खेद है कि आज स्वतन्त्रता के इतने वर्ष पश्चात् भी देश से गो-वध का कलंक नहीं धुला है। इसमें मुख्यतः हमारे राजनेताओं का ही दोष है। आज भी गोवंश की स्थिति मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में यही है–

''दाँतों तले तृण दबाकर है दीन गायें कह रहीं।

हम पशु और तुम मनुज, पर योग्य क्या तुमको यही''॥

इस सृष्टि में सभी मनुष्य सुख और दुख को स्वीकार करते हैं। क्या कोई ऐसा भी मनुष्य है जिसके गले को कोई काटे या उसकी अपनी रक्षा वह दुःख और सुख का अनुभव न करे ? जब सबको सुख में ही प्रसन्नता है तो बिना अपराध किसी प्राणी का प्राण-वियोग करके अपना पोषण करना यह सत्पुरुषों के सामने निन्दित कर्म है। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर इस सृष्टि में मनुष्यों के आत्माओं में अपनी दया और न्याय को प्रकाशित करे कि जिसे सब दया और न्यायमुक्त होकर सर्वदा सर्वोपकारक काम करें और स्वार्थपन से पक्षपातयुक्त होकर कृपापात्र गाय आदि पशुओं का

19

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित लघु पुस्तिका

गोकरुणानिधि

इस पुस्तक में महर्षि दयानन्द ने गौ आदि सभी उपकारी पशुओं की हत्या के विरोध में अनेक युक्तियाँ प्रस्तुत की हैं। महर्षि केवल गाय ही नहीं, अपितु समस्त पशुओं के ही वध के विरोधी हैं क्योंकि उनकी हत्या से संसार की हानि भी बहुत होती है, क्योंकि प्रत्येक पशु को किसी-न-किसी प्रकार से मानव का उपकार करने के लिए ही परमात्मा ने बनाया है। गाय की हत्या के विरोध में तो महर्षि का यह तर्क भी अधिक प्रबल है कि गाय हमारे देश की अर्थ-व्यवस्था का आधार है। पूर्वकाल में पशुओं से मिलनेवाले खाद से उत्पन्न खेती द्वारा तथा दूध, घृत आदि पदार्थों के सेवन से न केवल हमारी खाद्य-समस्या का समाधान होता था अपितु मनुष्य भी बलवान्, स्वस्थ एवं नीरोग रहते थे। वे दीर्घजीवी होते थे।

प्राचीनकाल में हमारे देश में गोवंश प्रचुर मात्रा में था। यही कारण था कि घी यहाँ पर सस्ता मिलता था, जबकि आजकल घी का भाव महंगा है। पशुओं के खाद के अभाव में आज रासायनिक खाद इतने महंगे हो गये हैं कि किसान उससे परेशान हैं। इसका दूसरा दुष्प्रभाव यह भी होता जा रहा है कि यदि वे यह

9

आर्यसमाज के अनमोल रत्न

रामप्रसाद बिस्मिल

स्वतंत्रता-संग्राम में काकोरी षड़यंत्र के अपराध में जिन चार व्यक्तियों को फाँसी दी गई थी उनमें रामप्रसाद बिस्मिल प्रमुख थे। इन्होंने काकोरी में रेल से सरकारी खजाना लूटने का प्रयत्न किया था।

रामप्रसाद के पिता श्री मुरलीधर अपने बच्चों पर कड़ी निगरानी रखते थे। एक बार रामप्रसाद कहीं खेलने चले गए तो उन्हें इतना पीटा गया कि वे कई दिन तक उठ न सके। शायद यहीं से उनके दिल में बगावत के भाव उत्पन्न हुए। उन्होंने स्वयं लिखा है – 'इस प्रकार खूब पिटता था, पर उद्दंडता अवश्य करता था शायद उस बचपन की मार से ही यह शरीर बहुत कठोर तथा सहनशील बन गया।'

रामप्रसाद में पढ़ने की इच्छा बड़ी तीव्र थी। वे जैसे-तैसे पैसे जुटाकर किताबें खरीदते और पढ़ते थे। कुछ गलत किस्म की किताबें पढ़ी जाने से उनमें कुछ बुराइयाँ भी घर करने लगी थीं,

पर कुछ दिनों बाद जब आर्यसामज में आना-जाना हुआ तो पुरोहित जी के उपदेशों से उनकी ये आदतें छूट गईं। इन्हीं दिनों उन्हें 'सत्यार्थ प्रकाश' पढ़ने को मिला। इसे पढ़कर उनके जीवन का एक नया अध्याय शुरू हुआ। उन्होंने स्वयं लिखा है कि इस ग्रंथ से उनके जीवन का स्वर्णिम पृष्ठ जुड़ गया। वे तख्त पर कंबल बिछाकर सोने लगे। रात के समय खाना भी छोड़ दिया। उबालकर दाल या साग से एक समय भोजन करते थे। मिर्च और खटाई तो छूते भी नहीं थे। व्यायाम करने लगे। नित्य प्रति स्वाध्याय भी करते। कोई साधु-महात्मा आते तो उनका उपदेश अवश्य सुनते।

आर्यसमाज में उनकी श्रद्धा देखकर कुछ लोगों ने उनकी शिकायत उनके पिता जी से कर दी। पिता जी ने जिद पकड़ ली कि या तो आर्यसमाज छोड़ दो या घर छोड़ दो। रामप्रसाद टस से मस नहीं हुए। केवल एक कमीज़ और धोती पहनकर घर से निकलने को तैयार हो गए और पिता के पैर छूकर भयानक सर्दी की रात को ही घर से निकल पड़े। जंगल में एक पेड़ पर बैठकर रात बिताई भूख लगने पर खेतों से हरे चने तोड़कर खाए। नदी में स्नान किया और जलपान किया। दूसरे दिन वे आर्यसमाज गए और स्वामी अखिलानंद का व्याख्यान सुना।

रामप्रसाद आर्यसमाज में जाते रहे। उन्होंने विद्वानों की भरसक सेवा की। आर्यकुमार सभा की स्थापना हुई। उसकी ओर से शहर में व्याख्यान किए जाने लगे। वे व्याख्यान देशभक्ति और कर्त्तव्य परायणता से भरपूर होते थे। उचित स्थान न मिलने के कारण आर्य कुमार सभा मैदानों में ही चलती रही।

18

बोध कथा

एक वाक्य से जीवन बदल गया

क्या आपने कभी सुना है कि एक ही वाक्य से किसी पापी का जीवन बदल गया हो ? नहीं सुना तो सुनिये ।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी जेहलम की आर्यसमाज में उपदेश कर रहे थे। उपदेश के बाद एक युवक अमीचंद ने प्रभु भक्ति का भजन सुनाया। उसकी मीठी आवाज सुनकर सब मग्न हो गए। अन्त में किसी ने स्वामीजी के कानों में कह दिया—स्वामी जी। अमीचंद का कण्ठ तो बड़ा मधुर है, पर है दुराचारी और महापापी, पतित।

स्वामी जी ने कुछ क्षण सोच अमीचंद को पास बुलाकर एक ही तीर मारा और सब कुछ कह डाला। वे बोले—अमीचंद! हो तो कमल, हीरे! पर कीचड़ में पड़े हो।'

बस तीर जा लगा। उसी क्षण अमीचंद के जीवन ने पलटा खाया। वह पुकार उठा, बस –

"नहीं चाहिए तहसीलदारी नहीं जजी दरकार।
अब अपनी सेवा में राखो किंकर चौकीदार ।"

अब अमीचंद ने घर जाकर शराब की बोतलें तोड़ डालीं। पत्नी को घर ले आया और सन्ध्या, यज्ञ तथा वेदों का स्वाध्याय करने लगा। सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा। उसका जीवन ही पलट गया। वह आर्यसमाज का भजनोपदेशक बन गया और महर्षि दयानन्द के गुण गाने लगा।

देखिए महर्षि के एक वाक्य ने क्या जादू दिखलाया।

स्मरण है। केवल वाणी से ईश्वर–ईश्वर करने से वह लाभ नहीं हो सकता, जो कि ईश्वर के उपदेश वेद द्वारा बतलाये मार्ग पर चलकर होता है।

7. फिर सन्ध्या क्यों करें ?

सन्ध्या भी मानसिक क्रिया है। इससे मनुष्य का मन शुद्ध और पवित्र होकर उसकी श्रेष्ठ कर्म में प्रवृत्ति बढ़ती है। अतः सन्ध्या करनी आवश्यक और मानव–कल्याण का एक सोपान है।

8. क्या ईश्वर एक ही है, अनेक नहीं ?

ईश्वर होता ही एक है। अनेक ईश्वर हो ही नहीं सकते। सर्वश्रेष्ठ सत्ता एक ही होती है। अनेक नहीं, अतः ईश्वर भी एक है।

9. ईश्वर की प्राप्ति का क्या अभिप्राय है ?

ईश्वर के गुणों को मनुष्य अपने भीतर धारण करके आत्मोन्नति कर योगाभ्यास की रीति से ईश्वर साक्षात् करे। इसी को ईश्वर–प्राप्ति कहा जाता है।

10. जब ईश्वर सर्वशक्तिमान् है तो जो चाहे कुछ क्यों नहीं कर सकता ?

ईश्वर जगत् का नियन्ता है। जैसे वह जीवों और जड़ जगत् को नियम में रखता है, उसी भाँति स्वयं भी अपने नियमों पर रहता है। जैसे स्वयं बनाये नियमों को तोड़ने वाले मनुष्य को भी अच्छा नहीं समझा जाता, फिर सर्वेश्वर का तो कहना ही क्या ? अतः ईश्वर भी अपने नियमानुसार ही कार्य करता है, यह गुण है, दोष नहीं। सर्वशक्तिमान् इसलिए है कि अपने काम (जगत् रचना, पालना और संहार करने) आदि में किसी जीव की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता। ईश्वर के नियम सत्य और अटल हैं। उनमें परिवर्तन का नाम भी नहीं ।

इन्हीं दिनों रामप्रसाद का संपर्क कुछ ऐसे व्यक्तियों से हुआ जो देश को आजाद कराने की सोचते थे। शाहजहाँ पुर में लोकमान्य तिलक के विचार सुनकर वे आजादी के संघर्ष में कूद पड़े। उन्होंने 'अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली?' पुस्तक लिखकर देशवासियों के खून को गर्म करना चाहा। 'बालशेविकों की करतूत', 'मन की लहर', 'कैथराइन' 'स्वदेशीरंग', 'यौगिक साधना' आदि पुस्तकें भी उन्होंने लिखीं व अनुवाद किए।

काकोरी रेल डकैती में उन्होंने अभूतपूर्व योगदान दिया था। इसी केस में वे पकड़े गए और 19 दिसंबर, 1927 को उन्हें गोरखपुर जेल में फाँसी की सजा दी गई। फाँसीघर के दरवाजे पर जाकर उन्होंने कहा था, 'मैं ब्रिटिश साम्राज्य का विनाश चाहता हूँ।' इसके बाद तख्ते पर खड़े होकर प्रार्थना के बाद, "ओ३म् विश्वानि देव मन्त्र का पाठ करके वे फंदे से झूल गए। उनका लिखा यह गीत –

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,

देखना है जोर कितना बाजु-ए-कातिल में है।'

स्वतंत्रता आंदोलन में क्रांतिकारियों के लिए एक मंत्र के समान था।

10

महापुरुषों के जीवन–चरित्र

महाराणा प्रताप

मेवाड़ की वीरभूमि ने अगणित स्वाभिमानी देशभक्तों को जन्म दिया है। इसी मेवाड़ में महाराणा संग्राम सिंह (राणा सांगा) उत्पन्न हुए। वे इतने वीर थे कि उनका एक हाथ, एक पैर, और एक आँख युद्ध में नष्ट हो गए थे। उनके शरीर पर अस्सी घावों के चिह्न थे। फिर भी युद्ध में उनकी तलवार के सामने शत्रु टिक नहीं पाते थे। उनका पुत्र उदय सिंह पिता के गुणों को पूरी तरह धारण नहीं कर पाया। उदय सिंह के तीन पुत्र थे – प्रताप सिंह, शक्ति सिंह और जगमल।

महाराणा उदय सिंह की मृत्यु के बाद उनकी अंतिम इच्छा के आधार पर प्रताप सिंह ने जगमल को मेवाड़ का राणा बनाया। जनता को यह स्वीकार नहीं हुआ, क्योंकि जगमल विलासी तथा

जाने से प्रत्यक्ष सिद्ध है। इनकी सत्ता का निषेध नहीं हो सकता।

4. ईश्वर को न माने तो क्या हानि है ?

सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् पदार्थ के संयोग से जो आत्मोत्थान होता है, वह नहीं हो सकेगा और जीवात्मा कभी भी दुःखों से पार न होकर जन्म-मरण के प्रवाह में पड़ा रहेगा। ईश्वर ही एक पूर्णसत्ता है, जिसकी उपासना और सहायता से मनुष्य उन्नत हो सकता है। अतः ईश्वर को न मानने में इन गुणों से मनुष्य वंचित रह कर परम कल्याण को प्राप्त नहीं कर सकता ।

5. हमें ईश्वर भक्ति क्यों करनी चाहिए ?

हमें ईश्वर की भक्ति क्यों करनी चाहिए, क्योंकि हमारा कर्तव्य बनता है कि किसी से कुछ प्राप्त करने पर उसका धन्यवाद करें। ईश्वर ने सब कुछ दिया है। उसने हमें आँखें, कान, हाथ, पैर आदि ऐसी अनमोल चीजें दीं, जिन्हें दुनिया का कोई भी व्यक्ति नहीं दे सकता। इसलिए हमें भक्ति के रूप में उसका धन्यवाद करना चाहिए। ईश्वर की भक्ति से बुराईयाँ दूर होती हैं, आत्मा पापों से मुक्त हो जाता है और आत्मिक शक्ति बढ़ती है। आज मैडिकल साईंस ने भी प्रमाणित किया है कि प्रभु–भक्ति से मन की जो शान्ति और एकाग्रता होती है, उससे केवल हृदय रोग और मानसिक रोग ही दूर नहीं होते अपितु और कई प्रकार के रोगों में यह बहुत लाभदायक है।

6. ईश्वर का नाम लेकर कोई अच्छे काम करें, तो उसकी क्या गति होगी ?

श्रेष्ठ कर्म करना ही ईश्वर की आज्ञा है। यही उसका नाम

लकड़ी आदि पर चन्दन क्यों चढ़ाते हो? और जो व्याप्य की करते हो तो परमेश्वर की पूजा करते हैं, ऐसा झूठ क्यों बोलते हो ? हम पत्थर के पुजारी हैं ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते ? अब कहिए, 'भाव' सच्चा या झूठा ? जो कहो सच्चा है तो तुम्हारे भाव के अधीन होकर परमेश्वर सिद्ध हो जाएगा और तुम मृत्तिका (मिट्टी) में सुवर्ण (सोना) रजत (चान्दी) आदि; समुद्रफेन (समुद्र झाग) में मोती, जल में घृत (घी), दुग्ध (दूध), दधि (दही) आदि और धूल में मैदा, शक्कर आदि की भावना करके उनको वैसे क्यों बनाते हो ? तुम लोग दुःख की भावना कभी नहीं करते, वह क्यों होता ? और सुख की भावना सदैव करते हो, वह क्यों नहीं प्राप्त होता ? अन्धा पुरुष नेत्र की भावना करके क्यों नहीं देखता ? मरने की भावना नहीं करते, क्यों मर जाते हो ? इसलिए तुम्हारी भावना सच्ची नहीं। क्योंकि जैसे में वैसी करने का नाम भावना कहते हैं। जैसे अग्नि में अग्नि, जल में जल जानना। और जल में अग्नि, अग्नि में जल समझना अभावना है, क्योंकि जैसे को वैसा जानना ज्ञान और अन्यथा जानना अज्ञान है। इसलिए तुम अभावना को भावना और भावना को अभावना कहते हो। वेद कहता है–

न तस्य प्रतिमा अस्ति । (यजुर्वेद ३२-३)

अर्थ – जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा, परिमाण, सादृश्य या मूर्ति नहीं है।

3. जो वस्तु दिखाई नहीं देती, उसको क्यों माना जावे ?

न दिखाई देना पदार्थ की सत्ता को नहीं रोक सकता, यदि उसकी सिद्धि दूसरी रीतियों से हो सके। भूख-प्यास, सुख-दुख दिखाई नहीं देते, परन्तु प्राण ओर मन द्वारा ग्रहण किये

कायर था। राव सलूमार जैसे सरदारों ने एक सभा में प्रताप सिंह को मेवाड़ के राज्य सिंहासन पर बैठाने का निर्णय किया। दूसरे ही दिन प्रताप को महाराणा की पदवी दी गई और वे मेवाड़ के अधिपति बन गए। सिंहासन पर बैठते ही महाराणा प्रताप ने ये प्रतिज्ञाएँ की :–

(1) जब तक मैं देश को स्वतंत्र न करा लूँगा, महलों में न रहूँगा।

(2) तब तक मैं सोने चाँदी के पात्रों में भोजन न करूँगा।

(3) तब तक मैं पलंग पर न सोकर भूमि पर सोया करूँगा।

(4) तब तक मैं दाढ़ी-मूँछ के बाल न कटवाऊँगा।

एक दिन महाराणा प्रताप अपने भाई शक्ति सिंह को आखेट के लिए साथ ले गए। वहाँ एक शिकार पर दोनों भाईयों का झगड़ा हो गया। दोनों तलवारें लेकर एक दूसरे पर पिल पड़े। इन्हें बचाने की भावना से कुल पुरोहित ने दोनों के बीच में आकर अपनी छाती में कटार मारकर अपनी जान दे डाली। इस प्रकार उस ब्राह्मण ने अपने प्राणों की बलि चढ़ाकर इस क्षत्रिय वंश को और देश को बचा लिया। इस घटना को देखकर दोनों भाई लड़ने से तो हट गए किंतु शक्ति सिंह उसी दिन मेवाड़ छोड़कर अकबर की सेना में जा मिला। जाते हुए वह कह गया, "प्रताप तेरे दाँत तोड़कर कर ही छोडूँगा।"

जिन दिनों महाराणा प्रताप मेवाड़ के अधिपति बने, उन दिनों लगभग सारा राजस्थान मुगल राज्य के अधीन हो चुका था। अकबर उस समय सम्राट था। उसने अपनी विषैली कूटनीति के अधीन अच्छे-अच्छे राजपूतों को अपने शासन में ऊँचे पद दे रखे थे। राजपूतों की बेटियों के विवाह मुगल सरदारों से होने लगे थे। स्वयं अकबर ने मानसिंह की बहन जोधाबाई को अपनी रानी बना लिया था। सारे राजस्थान में एकमात्र राणाप्रताप ही ऐसा व्यक्ति था, जिसने अकबर के सामने सिर नहीं झुकाया था।

राणा प्रताप को अधीन करने के विचार से एक बार अकबर ने मानसिंह को उसके पास भेजा। राणा प्रताप ने मानसिंह का उचित सत्कार किया। एकांत में मानसिंह ने प्रताप को समझाते हुए कहा, "महाराणा प्रताप ! आप स्वाधीनता के पुजारी हैं। मैं आपका आदर करता हूँ। परंतु शाही सेना का सामना करना आपके लिए असंभव है। अतः आप हठ को छोड़ दें। लक्ष्मी आपके चरण चूमेगी।"

यह सुनकर प्रताप की त्यौरियाँ चढ़ गईं। वे उसकी बात काटकर बोले, "मानसिंह, मैं अकबर के बल-वैभव को जानता हूँ। दासता का ऐश्वर्य-सुख स्वतंत्रता के सुख के सामने तुच्छ हैं। अपनी बहन-बेटियों को अकबर के विलास का साधन बनाकर ऐश्वर्य भोगना नीचता है।" इस उत्तर को मानसिंह ने अपने पर कटाक्ष समझा और वापस आकर अकबर को सारी कहानी सुनाई।

17
वैदिक प्रश्नोत्तरी

1. **मूर्तिपूजा वेद के विरुद्ध क्यों मानी जाती है ?**
क्योंकि जब ईश्वर निराकार है और अवतार नहीं लेता तो मूर्ति किसकी ? इसलिए उसकी मूर्ति नहीं बन सकती। मूर्ति को ईश्वर मान कर उसकी पूजा करना अविद्या है। मूर्ति और चित्र की पूजा की जगह हमें महापुरुषों के चरित्र की पूजा करनी चाहिए ।

2. **जब परमेश्वर व्यापक है तो मूर्ति में भी है। फिर चाहे किसी पदार्थ में भावना करके पूजा करना अच्छा क्यों नहीं?**
जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना अन्यत्र न करना यह ऐसी बात है कि जैसा चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ा के एक छोटी सी झोंपड़ी को स्वामी मानना। देखो, यह कितना बड़ा अपमान है। वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो। जब व्यापक मानते हो तो वाटिका में से पुष्पपत्र तोड़ के क्यों चढ़ाते ? चन्दन घिस के क्यों लगाते? धूप को जला के क्यों देते ? घंटा, घरियाल, झांझ पखाजों को लकड़ी से कूटना पीसना क्यों करते हो ? तुम्हारे हाथों में है, क्यों जोड़ते ? शिर में है क्यों शिर नमाते ? अन्न जल आदि में है क्यों नैवेद्य धरते? जल में है स्नान क्यों कराते ? क्योंकि उन सब पदार्थों में परमात्मा है और तुम व्यापक पूजा करते हो वा व्याप्य की। जो व्यापक की करते हो तो पाषाण (पत्थर),

96. **पुराण** - जो प्राचीन ऐतरेय शतपथ ब्राह्मणादि ऋषि मुनिकृत सत्यार्थ पुस्तक हैं, उन्हीं को 'पुराण, इतिहास, कल्प गाथा और नाराशंसी' कहते हैं।

97. **उपवेद** - जो आयुर्वेद वैद्यकशास्त्र, जो धनुर्वेद शास्त्रास्त्रविद्या राजधर्म, जो गान्धर्ववेद गानशास्त्र ओर अर्थवेद जो शिल्पशास्त्र हैं, इन चारों को 'उपवेद' कहते हैं।

98. **वेदांग** - जो शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष आर्ष सनातन शास्त्र हैं, इनको 'वेदांग' कहते हैं।

99. **उपांग** - जो ऋषि मुनि कृत मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त छः शास्त्र है, इनको उपांग कहते हैं।

100. **नमस्ते** - मैं तुम्हारा मान्य करता हूं।

परिणामस्वरूप अकबर ने मानसिंह को विशाल सेना के साथ राणा प्रताप पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी। वह दल-बल के साथ मेवाड़ पर चढ़ गया। प्रताप अपने मुट्ठी-भर सैनिकों को लेकर इस स्वतंत्रता-युद्ध में आ डटा। भयंकर युद्ध हुआ। अकबर की सेना में भगदड़ मच गई। प्रताप के पास मुट्ठी-भर सैनिक थे, जो प्राणों का मोह छोड़कर शत्रु-सेना में प्रलय का दृश्य उपस्थित कर रहे थे। इसी समय प्रताप की दृष्टि मानसिंह पर पड़ी। वह हाथी पर सवार था। राणा प्रताप का संकेत पाते ही उनके घोड़े चेतक ने हाथी के मस्तक पर अपने दोनों पाँव जमा दिए। प्रताप ने सिंह की गर्जना करते हुए कहा, "मानसिंह मैं तुम्हारा स्वागत करने के लिए आया हूँ।" यह कहकर प्रताप ने भाले से वार किया, परंतु मानसिंह अंबारी के पीछे छिप गया। उसका हाथी भाग खड़ा हुआ।

मानसिंह के भागने पर कुछ अन्य यवन सेनापतियों ने राणा प्रताप को आ घेरा। राणा को इस विपत्ति से बचाने के लिए, उसके एक सेनापति ने राणा का मुकुट स्वयं धारण कर लिया और राणा को निकल जाने को कहा। राणा अपने घायल घोड़े पर जा रहे थे। दो पठान सैनिकों ने उनका पीछा किया। शक्ति सिंह ने भाई की वीरता अपनी आँखों से देखी थी। उसके हृदय में भाई का प्यार उमड़ आया। उसने भी अपना घोड़ा उधर दौड़ाया। प्रताप के मार्ग में नाला आ गया। स्वामीभक्त चेतक उस

नाले को कूद तो गया, किंतु दूसरे किनारे पर पहुँचते ही ढेर हो गया। इधर उन दो पठानों को मौत के घाट उतारकर शक्ति सिंह भी भाई के पास जा पहुँचा। उसने तलवार फेंक दी और भाई के पैरों को पकड़कर रोने लगा। अपने अपराध की क्षमा माँगी। शक्ति सिंह ने अपना घोड़ा प्रताप सिंह को दे दिया।

राणा प्रताप के सामने मुगल सेना ने कई बार मुँह की खाई, परंतु प्रताप के पास कुछ ही सैनिक रह गए थे। रहने का स्थान न था। खाने को भोजन न था। एक बार कई दिन भोजन किए बिना बीत गए थे। बच्चे भी भूखे थे। घास की रोटियाँ पकाई गईं। एक रोटी बच्चा खा रहा था कि जंगली बिलाव उसे छीनकर ले गया। प्रताप का धैर्य भी जवाब देने लगा, वे अकबर को संधि-पत्र लिख बैठे। लेकिन बेटी चंपा को जब यह पता लगा तो उसने पिता को मनोबल प्रदान किया और इतिहास इस बात का साक्षी है कि अकेला राणा प्रताप ऐसा था, जिसने अकबर की दासता स्वीकार नहीं की थी।

एक दिन एक महान् संपत्तिशाली भामाशाह उसके पास आया। उसने अपने पूर्वजों की सारी कमाई देशरक्षा-निमित्त राणा प्रताप के चरणों में भेंट कर दी। इस धन से राणा ने पुनः सैनिकों को इकट्ठा किया और अपने कई किले मुगल साम्राज्य से वापस ले लिए। अकेला चित्तौड़ शत्रुओं के अधीन रह गया।

87. **अनुमान** - किसी पूर्व दृष्ट पदार्थ के एक अंग को प्रत्यक्ष देख के, पश्चात् उसके अदृष्ट अंगों का जिससे यथावत् ज्ञान होता है, उसको 'अनुमान' कहते हैं।

88. **उपमान** - जैसे किसी ने किसी से कहा कि गाय के तुल्य नीलगाय होती है, ऐसे जो किसी सादृश्य उपमा से ज्ञान होता है, उसको 'उपमान' कहते हैं

89. **शब्द** - जो पूर्ण आप्त परमेश्वर और आप्त मनुष्य का उपदेश है, उसी को 'शब्द' प्रमाण कहते हैं।

90. **एतिह्य** - जो शब्दप्रमाण के अनुकूल हो, जो असम्भव और झूठ लेख न हो, उसकी को 'ऐतिह्य' (इतिहास) कहते हैं।

91. **अर्थापत्ति** - जो एक बात के कहने से दूसरी बिना कहे समझी जाय, उसको 'अर्थापत्ति' कहते हैं।

92. **सम्भव** - जो बात प्रमाण, युक्ति और सृष्टिक्रम से युक्त हो, वह 'सम्भव' कहाता है।

93. **अभाव** - जैसे किसी ने किसी से कहा कि तू जल ले आ। उसने वहाँ देखा कि यहाँ जल नहीं है, परन्तु जहाँ जल है, वहां से ले आना चाहिए। इस अभाव निमित्त से जो ज्ञान होता है, उसे 'अभाव' कहते हैं।

94. **शास्त्र** - जो सत्य विद्याओं के प्रतिपादन से युक्त हो और जिससे मनुष्यों को सत्य सत्य शिक्षा हो उसको 'शास्त्र' कहते हैं।

95. **वेद** - जो ईश्वरोक्त, सत्य विद्याओं से युक्त **ऋक्संहितादि** चार पुस्तक हैं, जिनमें मनुष्यों को सत्यासत्य का ज्ञान होता है, उनको 'वेद' कहते हैं।

अनेक कार्यों को रचके यथावत पालन करके रखता है उसका नाम 'प्रलय' है।

80. मायावी - जो छल, कपट, स्वार्थ में हो प्रसन्नता, दम्भ, अहंकार शठतादि दोष हैं, और जो मनुष्य इनसे युक्त हो, वह 'मायावी' कहाता है।

81. आप्त - जो छलादि दोषरहित, धर्मात्मा, विद्वान्, सत्योपदेष्टा, सब पर कृपादृष्टि से वर्त कर अविद्यान्धकार का नाश करके अज्ञानी लोगों के आत्माओं में विद्यारूप सूर्य का प्रकाश सदा करे, उसको 'आप्त' कहते हैं।

82. परीक्षा - जो प्रत्यक्षादि आठ-प्रमाण, वेद विद्या, आत्मा की शुद्धि और सृष्टिक्रम से अनुकूल विचार के सत्यासत्य को ठीक निश्चय करना है, उनको 'परीक्षा' कहते हैं।

83. आठ प्रमाण - प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, एतिह्य, अर्थापत्ति, संभव और अभाव ये 'आठ प्रमाण' हैं। इन्हीं से सब सत्यासत्य का सम्भव यथावत् निश्चय मनुष्य कर सकता है।

84. लक्षण - जिससे उसका स्वाभाविक गुण है जाना जाए जैसे कि रूप से अग्नि जाना जाता है, उसको 'लक्षण' कहते हैं।

85. प्रमेय - जो प्रमाणों से जाना जाता है, जैसे आंख का प्रमेय रूप अर्थ है, जो कि इन्द्रियों से प्रतीत होता है, उसको 'प्रमेय' कहते हैं।

86. प्रत्यक्ष - जो प्रसिद्ध शब्दादि पदार्थों के साथ श्रोत्रादि इन्द्रिय और मन के निकट सम्बन्ध से ज्ञान होता है, उसको 'प्रत्यक्ष' कहते हैं।

अंततः वह दिन आया, जबकि अपनी झोंपड़ी में पड़े-पड़े राणा प्रताप अंतिम श्वास ले रहे थे। चारों ओर उनके गिने-चुने वीर शोकाकुल अवस्था में खड़े थे। राव सलूमर ने उनके चरण छूकर पूछा, ''आप इतने दुखित क्यों हैं?'' महाराणा ने करवट ली और चित्तौड़ पर मुगल ध्वज को दिखाते हुए अपनी प्रतीज्ञा के अधूरे रहने की ओर संकेत किया। उन्होंने यह भी कहा ''मुझे चिंता है कि मेरा पुत्र अमरसिंह स्वतंत्रता की महिमा नहीं जानता, जिसके लिए मैंने इतने कष्ट झेले हैं। वह मुगल सम्राज्य से संधि कर उसकी दासता स्वीकार कर लेगा।'' यह सुनकर वीरों ने म्यान से तलवारें निकाल लीं और अपनी-अपनी तलवार को छूकर प्रतिज्ञा की – ''हम अमरसिंह को ऐसा न करने देंगे। जब तक हमारे दम में दम है, तब तक हम स्वतंत्रता की कीमत चुकाते रहेंगे।'' उन्होंने महाराणा प्रताप की प्रतिज्ञा को भी दोहराया और कहा कि जब तक हम चित्तौड़ पर विजय प्राप्त न कर लेंगे, चारपाई पर न सोएँगे, थाली में न खायेंगे, एक स्थान पर बसकर न रहेंगे।

यह सुनकर महाराणा प्रताप अपना भौतिक शरीर तथा अक्षय कीर्ति छोड़कर संसार से प्रस्थान कर गए। उनके अनुयायी आज तक अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार घुमक्कड़ का जीवन बिता रहे हैं। राणा प्रताप की देशभक्ति युग-युग तक हमें स्वतंत्रता का संदेश देती रहेगी।

11

महापुरुषों के जीवन से सीखें

स्वाध्याय

'वेद', 'उपनिषद', 'गीता', 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका', 'सत्यार्थ प्रकाश' और इसी प्रकार के अन्य ग्रंथों को पढ़ना, प्रतिदिन उन पर विचार करना – स्वाध्याय है। थोड़ा पढ़ो या अधिक, लेकिन पढ़ो अवश्य। कुछ लोग समाचार पत्रों व पत्रिकाओं को पढ़ना ही स्वाध्याय समझते हैं, लेकिन ऐसा नहीं है। इनको भी समाज और संसार को जानने के लिए पढ़ना चाहिए, परंतु स्वाध्याय का वास्तविक अर्थ उन ग्रंथों का पाठ करना है जो संतों, महात्माओं, ऋषियों और योगियों के लिखे हैं। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि जो व्यक्ति प्रतिदिन अच्छे ग्रंथों का पाठ करता है, उसे उतना ही पुण्य मिलता है, जितना कोई व्यक्ति धन, अन्न, हीरे, सोने, मोती ओर पशुओं से भरी हुई सारी पृथ्वी को दान करके प्राप्त करता है।

महात्मा हंसराज जी के जीवन की एक घटना है, उन्होंने डी०ए०वी० कॉलेज के लिए अपना जीवन दान दे दिया था। बड़े भाई मुल्खराज अपने वेतन का आधा भाग चालीस रुपये उन्हें मासिक देते थे। वे उसी पर निर्वाह करते थे। एक बार भाई

16

ओ३म्

आर्योद्देश्यरत्नमाला

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सब मनुष्यों के कल्याण के लिए इस लघु पुस्तिका की रचना की है। इस पुस्तिका में वैदिक धर्म की मूल 100 स्थापनायें हैं। जिसमें 76 से 100 तक यहाँ दी जा रही हैं।

76. व्यभिचार त्याग - जो अपनी स्त्री के बिना दूसरी स्त्री के साथ गमन करना और अपनी स्त्री को ऋतुकाल के बिना वीर्यदान देना, तथा अपनी स्त्री के साथ भी वीर्य का अत्यन्त नाश करना, और युवावस्था के बिना विवाह करना है, यह सब 'व्यभिचार' कहाता है, उसको छोड़ देने का नाम 'व्यभिचार -त्याग' है।

77. जीव का स्वरूप - जो चेतन, अल्पज्ञ, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान गुणवाला तथा नित्य है, वह 'जीव' कहाता है।

78. स्वभाव - जिस वस्तु का जो वास्तविकगुण है जैसे कि अग्नि में रूप और दाह, अर्थात् जब तक वह वस्तु रहे तब तक उसका वह गुण भी नहीं छूटता, इसलिए इसको 'स्वभाव' कहते हैं।

79. प्रलय - जो कार्य जगत् का कारणरूप होना अर्थात जगत् करने वाला ईश्वर जिन जिन कारण से सृष्टि बनाता, जो कि

३०- ओं त्वमग्ने यज्ञानांꣳ होता विश्वेषा हितः। देवेभिर्मानुषे जने।।

सामवेद १। १–२।।

अर्थः हे पूजनीयेश्वर, तू छोटे बड़े सब यज्ञों का उपदेष्टा है विद्वान् लोगों से विचारशील पुरुषों में भक्त्युत्पादन द्वारा तुम स्थित किए जाते हो।

३१- ओं ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वोअद्य दधातु मे।।

अथर्व० कां १। सू० १ मं० १।।

अर्थः जो विश्व के पदार्थ सब रूपों को धारण करते हुए सब ओर से भ्रमण कर रहे हैं। वाणी का स्वामी उन नाना रूपों के बलों को आज मुझे, मेरे भीतर धारण कराये।

'इति स्वस्तिवाचनम्।

अप्रसन्न हो गए। उन्होंने सहायता के रुपये देना बंद कर दिया। महात्मा जी के पास कोई पूँजी तो थी ही नहीं। घर में भी कुछ नहीं था। केवल छह आने थे, उनके पास। घर में खाने को भी नहीं था। तीन दिन इसी प्रकार बीत गए। पत्रों में उन दिनों उनके विरूद्ध लेख छप रहे थे। घबराकर उन्होंने सोचा, "मैं यह कौन से मार्ग पर चल रहा हूँ? इसमें दुःख ही दुःख हैं, सुख का नाम भी नहीं, तब इसे छोड़ क्यों न दूँ," इस विचार के उत्पन्न होते ही घबराहट के साथ अपने छोटे कमरे में टहलने लगे । इधर से उधर, उधर से इधर। चैन नहीं। मछली जैसे पानी के बिना तड़पती है, ऐसे उनका दिन तड़प रहा था। तभी वे अपने कमरे में रखी उस अलमारी के पास पहुँच गए जिसमें पुस्तक रखी थी। जैसे ही उन्होंने गीता निकालकर एक पृष्ठ खोला, वहाँ लिखा था–

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"

अर्थात् तुम्हारा अधिकार कर्म में ही है फलों में बिल्कुल नहीं।

इन शब्दों को पढ़ते ही घबराहट दूर हो गई। ऐसा अनुभव हुआ जैसे कोई सामने खड़ा कहता हो, "अरे भाई, घबरा गया तो क्यों ? तेरा काम केवल काम करना है, उसके फल की चिंता करना नहीं। फल को ईश्वर पर छोड़ दो, आगे बढ़ो। इसके पश्चात् फिर उसे डगमगाना नहीं पड़ा, फिर कभी बेचैनी नहीं आई। यह है स्वाध्याय का फल।

12

आत्मचिंतन

अपने-आपको पढ़ना, अपने-आपको देखना कि यह जो अपना-आपा है, यह ऊपर चला जा रहा है या नीचे गिर रहा है? शुद्ध और पवित्र हो रहा है या गंदा और मलिन ? परंतु यह अपना आपा क्या है ? यह स्थूल शरीर नहीं, जिसे हम प्रतिदिन माँजते और संवारते हैं और जो अंत में राख हो जाता है। यह अपना-आपा अत्यंत सूक्ष्म है। यही सूक्ष्म शरीर है जो मन, बुद्धि और संस्कारों को लेकर हमारी आत्मा के साथ रहता है। इसका प्रतिदिन चिंतन करना आत्मचिंतन है।

इस सूक्ष्म शरीर मन, बुद्धि और संस्कारों को प्रतिदिन देखो। जैसे कोई पुस्तक पढ़ता है, वैसे प्रतिदिन अपने आपको पढ़ो। देखो कि इसमें कोई मैल तो नहीं आ गया है ? कोई गंदा विचार तो नहीं आ गया ? पुराना मैल कम हुआ या नहीं ? कोई शुभ विचार आया या नहीं ? कोई नई रोशनी जागी या नहीं ? यह है आत्मचिंतन का अर्थ।

यदि मैल बढ़ गया, कोई शुद्ध विचार नहीं आया तो सँभलो। इस सूक्ष्म शरीर को जो प्रतिदिन पढ़ता है, प्रतिदिन देखता है, वह कभी न कभी सँभलता है अवश्य। और जब सँभल जाता है तो ऊँचा उठता चला जाता है।

२७- ओं स्वस्ति नऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्ताक्ष्योंऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।

अर्थः बहुत कीर्तिवाला परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर हमारे लिए कल्याण का स्थापन करे और पुष्टि करने वाला सर्वज्ञाता ईश्वर हमारे लिए कल्याण को धारण करे। तीक्ष्ण तेजस्वी दुःखहर्त्ता ईश्वर हमारा कल्याण करे। बड़े-बड़े पदार्थों का पति हमारे लिए कल्याण को धारण करे।

२८- ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।

यजु: २५।१४,१५,१८,१६,२१।।

अर्थः हे संग करने योग्य विद्वान् लोगो ! हम कानों से अनुकूल ही सुनें। नेत्रों से अच्छी वस्तुओं को देखें। दृढ़ अंगों से आपकी स्तुति करने वाले हम लोग शरीरों से या भार्यादि के साथ विद्वानों के लिए कल्याणकारी जो आयु है उसको अच्छे प्रकार प्राप्त हों।

२६- ओ३म् अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि।।

अर्थः हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् कांति-तेजो-विशेष के लिए प्रशंसित हुए आप देवताओं के लिए हव्य देने को प्राप्त होइए। सब पदार्थों के ग्रहण करने वाले आप यज्ञादि शुभ कार्यों में स्मरणादि द्वारा हमारे हृदयों में स्थित होएँ।

पशुओं की तू रक्षा कर।

२४- ओ३म् आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽअपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे।।

अर्थः हे ईश्वर ! हमको स्तुति के योग्य संकल्प प्राप्त हों सब ओर से किसी से अविघ्नित सर्वोत्तम दुःखनाशक विद्वान् लोग जैसे हमारी सभा में वा सर्वदा वृद्धि के लिए ही हों, वैसे ही प्रतिदिन प्रमादशून्य रक्षा करने वाले बनाओ।

२५- ओं देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाꣳ रातिरभि नो निवर्तताम्। देवानाꣳ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे।।

अर्थः- हे भगवान् सरलतया आचरण करने वाले विद्वानों का कल्याण करने वाली अच्छी बुद्धि हमको प्राप्त हो और विद्वानों का विद्यादि पदार्थों का दान प्राप्त हो। देवों-विद्वानों के मित्रभाव को हम प्राप्त हों, जिससे कि वे देवता लोग हमारी अवस्था को दीर्घकाल पर्यंत जीने के लिए बढ़ाएँ।

२६- ओं तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये।।

अर्थः हम लोग ऐश्वर्यवाले चर और अचर जगत् के पति बुद्धि से प्रसन्न करने वाले परमात्मा की अपनी रक्षा के लिए स्तुति करते हैं। जैसे कि वह पुष्टिकर्ता धनों की वृद्धि के लिए हो, सामान्यतया रक्षक और विशेषतया कार्यों का साधक परमात्मा कल्याण के लिए हो। वैसे ही हम स्तुति करते हैं।

13

हमारा खान-पान

महर्षि चरक जब आयुर्वेद के सारे ग्रंथ लिख चुके, सब प्रकार की विधियों का, सब प्रकार की औषधियों का, चिकित्साओं का वर्णन कर चुके और उनका प्रचार भी कर चुके तो उनके मन में विचार आया कि अब जरा चलूँ और देखूँ तो सही, लोग मेरे बताए हुए मार्ग पर चलते हैं या नहीं ? मेरा परिश्रम सफल हुआ या नहीं? वह भेस बदलकर वैद्यों के बाजार में गए और ऊँची आवाज में कहा, 'कोऽरुक्'– स्वस्थ कौन ? अर्थात् रोगी कौन नहीं है ? वैद्यों ने आवाज सुनी, समझी और उत्तर में किसी ने कहा, 'जो च्यवनप्राश खाता है।' दूसरा बोला, 'जो चंद्रप्रभावटी खाता है।' तीसरा वैद्य बोला, 'जो सिद्ध मकरध्वज का सेवन करता है।' और किसी अन्य वैद्य ने लवणभास्कर चूर्ण के सेवन करने वाले को स्वस्थ बताया।

चरक कई स्थानों पर गए, 'कोऽरुक्' का प्रश्न किया, किंतु उन्हें कहीं भी ठीक उत्तर नहीं मिला। अंत में दुखी होकर वे एक सुनसान जंगल में जा पहुँचे और वहाँ एक सूखे वृक्ष के नीचे जा बैठे। वहीं पास में एक नदी बहती थी। उसी समय प्रसिद्ध वैद्य श्री वाग्भट्ट नदी से नहाकर बाहर आ रहे थे। चरक ने उन्हें पहचाना और फिर पर्वूवत् पुकारकर कहा, 'कोऽरुक्' ? यह पुकार सुनकर

वाग्भट्ट चलते-चलते रुक गए। आँखें उठाकर देखा, और बोले, 'हितभुक्, मितभुक्, ऋतभुक्।' यह सुनते ही चरक प्रसन्न हो गए और अपना परिचय देते हुए वाग्भटट् के सामने खड़े होकर वे बोले, 'तुम ठीक कहते हो वैद्यराज।'

हितभुक् का अर्थ है ऐसी वस्तुएँ खाएँ जो स्वास्थ्य के लिए हितकर हैं, केवल स्वाद के लिए मत खाओ, जीने के लिए खाओ। जिह्वा के स्वाद में फँसकर पेट में कूड़ा-करकट न भरते जाओ। यह सोचकर खाओ कि जो कुछ भी तुम खाते हो, उससे तुम्हें लाभ क्या होगा ? यह जिह्वा बड़ी नटखट है। ये नाना प्रकार के स्वाद ढूँढती रहती है। नाना प्रकार की वस्तुएँ माँगती है। स्वाद वाली चीजें खाओ, किंतु केवल स्वाद के लिए ही उन्हें खाना आरंभ न कर दो। ऐसी वस्तुएँ खाओ, जिनसे तुम्हारे शरीर को लाभ हो। मलाई खाओ, दूध पियो, दही खाओ, मक्खन खाओ, फल, सलाद और सब्जियाँ खाओ। वे वस्तुएँ प्रयोग करो, जिनमें केवल जिह्वा को ही स्वाद न आवे, अपितु तुम्हारे शरीर को शक्ति भी मिलें

परंतु मलाई भी खाओ तो कितनी ? यदि आप मलाई ही खाते जाएँ, रबड़ी ही पेट में डालते चलें, मक्खन ही चाटते रहें तो शरीर को इससे लाभ के स्थान पर हानि होगी। इसलिए वाग्भट्ट ने दूसरी बात कही, 'मितभुक्'। परिमित रूप में अर्थात् थोड़ा खाने वाला। अच्छी वस्तुएँ खाओ, परंतु सही मात्रा में। मर्यादा में रहकर खाओ। मर्यादा से अधिक पिया हुआ अमृत भी विष हो जाता है। पेट में चार रोटियों की जगह हो तो तीन रोटियाँ खाओ। कुछ

कारिणी ही होती है और जो अति सुंदर धन वाली है तथा सेवन के योग्य यज्ञ को प्राप्त होती है। वह पृथ्वी हमारे गृह की रक्षा करे वही पृथ्वी वनादि देशों में हमारी रक्षिका हो और विद्वान् लोग जिसके रक्षक हैं ऐसी वह पृथिवी हमारे लिये अच्छे स्थान वाली हो। परमात्मा से प्रार्थना है कि हमारे लिए सुंदर मार्ग वाली, अन्नादि धन पैदा करने वाली, वनादि में जिसका सुप्रबंध हो ऐसी और विद्वानों से जिसमें अच्छे स्थान बनाए जाएँ ऐसी पृथ्वी प्राप्त हो।

२३- ओ३म् इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽ अयक्ष्मा मा व स्तेन ईशत माघश्शंसो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि।। यजु० १।१।।

अर्थः हे ईश्वर ! अन्नादि इष्ट पदार्थ के लिए तुमको आश्रय लेते हैं और बलादि के लिए तेरा आश्रय लेते हैं।

हे जीवो ! तुम वायु सदृश पराक्रम करने वाले हो सब जगत् का उत्पादक देव यज्ञरूप श्रेष्ठ कर्म के लिए तुम सबों को संबद्ध करे उस यज्ञ द्वारा अपने ऐश्वर्य के भाग को बढ़ाओ। यज्ञ संपादन के लिए न मारने योग्य बछड़ों सहित व्याधिविशेषों से रहित यक्ष्म तपेदिक आदि बड़े रोगों से शून्य तुम लोगों के बीच जो चौर्यादि दुष्ट गुणयुक्त हो, वह उन गउओं का मालिक न बने और अन्य पापी भी उनका रक्षक न बने। ऐसा यत्न करो, जिससे बहुत-सी चिरकाल पर्यंत रहने वाली गौएँ निर्दुष्ट गोरक्षक के पास बनी रहें। और परमात्मा से प्रार्थना करो कि हे ईश्वर ! यज्ञ करने वाले के

अर्थः हे आदित्य ब्रह्मचारियो ! जिन पुरुषों को अच्छी नीतियों से सब पापों को उल्लंघन करके सन्मार्ग में प्रवृत्त करते हो, वे सब पुरुष किसी से पीड़ित न होकर बढ़ते हैं और धर्मानुष्ठान के बाद पुत्रपौत्रादिकों से अच्छी तरह प्रकट होते हैं।

२०- ओं यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्रसानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये।।

अर्थः हे मितभाषी देवता-विद्वान् लोगो ! अन्न के लाभ के लिए जिस रमणीय गमन साधनवाष्पयानादि की रक्षा करते हो और रखे हुए धन के कारण संग्राम में जिस रथ की रक्षा करते हो, बड़े यंत्र कला के विद्वानों से भी सेवनीय प्रातःकाल से ही गमन करने वाले उसी रथ पर हम कल्याण के लिए चढ़ें।

२१- ओं स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति ।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन।।

अर्थः मित भाषी विद्वान् लोगो ! हमारे लिए मार्ग के योग्य अर्थात् जलसहित देशों में कल्याण करो। और जलरहित देशों में जल की उत्पत्ति रूप कल्याण करो और जल में कल्याण करो और सब आयुधों से युक्त शत्रुओं को दबाने वाली सेना में कल्याण करो और हमारे पुत्रों के करने वाले उत्पत्ति स्थान में कल्याण करो और गवादि धन के लिए कल्याण को धारण करो।

२२- ओं स्वस्ति रिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा।।

ऋ० १० ।६३ ।३–१६ ।

अर्थः- जो पृथ्वी जाने वालों के अच्छे मार्ग के लिए कल्याण-

जगह पानी और हवा के लिए भी रहने दो। इसको कहते हैं उचित मात्रा में खाना, अर्थात् मितभुक् होना ।

परंतु केवल हितभुक् और मितभुक् से काम नहीं चलता। मनष्य यदि ऊपर उठना चाहे, इस जीवन को उस लक्ष्य की ओर ले जाना चाहे, जिसके लिए यह मिला है, तो उसके लिए यह आवश्यक है कि वह ऋतभुक् भी बने। अतः आप अच्छी वस्तुएँ खाएँ, बेशक थोड़ी खाएँ, परंतु वे वस्तुएँ खाएँ जो उत्तम कमाई से प्राप्त की गई हों। इस संबंध में आर्य सन्यासी आनंद स्वामी ने महात्मा हंसराज के जीवन की एक घटना का उल्लेख अपनी प्रवचन कथा में किया है।

महात्मा हंसराज एक बार हरिद्वार के मोहन आश्रम में ठहरे हुए थे। एक वानप्रस्थी उनके पास ही एक कमरे में रहते थे। एक दिन वह वानप्रस्थी महात्माजी के पास आए और जोर-जोर से रोने लगे। कहने लगे कि मैं लुट गया। मेरी उम्र भर की कमाई नष्ट हो गई। पूछने पर पता लगा कि वह पिछले कई वर्षों से ईश्वरभक्ति के मार्ग पर चलता हुआ ध्यान और उपासना की सीढ़ी तक पहुँच चुका था। भगवान् के ध्यान लगाने में उसे शीतल ज्योति, सुख और शांति की अनुभूति होने लगी थी, किंतु आज रात को उसने जब भी ध्यान लगाने की कोशिश की तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि रोशनी में लाल दुपट्टे वाली एक जवान लड़की खड़ी है। उसने कहा कि मैंने बार-बार मुँह धोकर प्राणायाम करके उसे हटाने का प्रयत्न किया, परंतु रोशनी में उसके अतिरिक्त और कुछ मुझे दिखाई नहीं देता।

महात्मा जी ने पूछा कि किसी बुरे व्यक्ति की संगत में तो नहीं बैठे ? कोई बुरी पुस्तक तो नहीं पढ़ी ? 'उसने कहा कि ऐसा कुछ नहीं किया। बातों-बातों में पता चला कि कल उसने एक सेठ के भंडारे में भोजन किया था। महात्मा जी ने कहा कि जाकर पता लगाओ, वह सेठ कौन है ? क्यों उसने भंडारा किया है? वानप्रस्थी गया। पता लगाकर उसने बताया कि सेठ एक शहर का रहने वाला है। उसने अपनी जवान बेटी को एक बूढ़े के पास रुपये लेकर बेच दिया है, उसमें से दो हजार रुपये लेकर वह हरिद्वार आया है और इस पाप का प्रायश्चित करने के लिए उसने भंडारा किया है। इस बात को सुनकर महात्मा जी ने कहा कि यह वह पुण्यभाव से दिया हुआ दान नहीं था, पाप की कमाई का एक भाग था – उस लड़की का मूल्य। जब तक यह अन्न तुम्हारे शरीर से नहीं निकलेगा, तब तक उस लड़की का दिखाई देना भी बंद न होगा।

यह है पाप का अन्न खाने का परिणाम। पाप के अन्न से आत्मा गिरती है। आगे बढ़ता हुआ मनुष्य इससे पीछे हटता है। इसलिए वाग्भट्ट ने कहा, 'केवल हितभुक् और मितभुक् होना ही पर्याप्त नहीं है। मानव यदि हर प्रकार के रोगों से बचना चाहता है तो उसे ऋतभुक भी होना चाहिए।'

वायुविद्या को हम सेवन करें।

१६- ओं सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्। दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्त्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये।।

अर्थः अच्छी प्रकार रक्षा करने वाली लंबी-चौड़ी उपद्रवरहित अच्छा सुख देने वाली, जो टूट न सके, जो अच्छे प्रकार बनाई गई है, अंतरिक्षलोकस्थ सुंदर यंत्रों से युक्त दृढ़ विद्युत् संबंधी नौका के ऊपर अर्थात् विमान के ऊपर हमलोग सुख के लिए चढ़ें।

१७- ओं विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिहुतः।सत्यया वो देवहूत्या हुवेम श्रृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये।।

अर्थः हे पूजनीय विद्वानों ! हमारी रक्षा के लिए आप उपदेश किया करें और पीड़ा देने वाली दुर्गति से हमारी रक्षा करो। हे विद्वान् लोगो! हमारी स्तुति सुनने वाले आपको देवताओं के योग्य सच्ची स्तुति से हम शत्रुओं से रक्षा करने के लिए और सुख के लिए बुलाया करें।

१८- ओ३म् अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः। आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये।।

अर्थः हे विद्वान् लोगो! रोगादि को पृथक् करो। सब मनुष्यों की देवताओं के न बुलाने की बुद्धि को पृथक् करो। लोभ बुद्धि को पृथक करो। पाप की इच्छा करने वाले शत्रु को, दुष्ट बुद्धि को दूर करो। द्वेष करने वाले सबों को हमसे दूर, पृथक् करो। हमारे लिए बहुत सुख कल्याण के लिए दो।

१६- ओ३म् अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि। यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये।।

लोगों के बीच में कौन बनाता है ? और हे अनेक प्रकार के जन्म वाले मननशील विद्वानों जितने तुम हो उन तुम सबके बीच में कौन यज्ञ को अलंकृत करता है ? जो यज्ञ हमारे पाप को हटा कर कल्याण के लिए पालन करता है।

१३- ओं येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः। त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्तसुपथा स्वस्तये।।

अर्थः जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिए अग्निहोत्री मननशील विद्वान् मन से सात होताओं से मुख्य यज्ञ को करता है अर्थात् जिनका विद्वान् लोग बड़े-बड़े यज्ञों द्वारा सम्मान करते हैं वे आदित्य ब्रह्मचारी भयरहित सुख को दें और हमारे कल्याण के लिए शोभित वैदिक मार्गों को अच्छे प्रकार से प्राप्तव्य करें।

१४- ओं य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः। ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये।

अर्थः जो विद्वान् लोग अच्छे ज्ञान वाले सब के जानने वाले स्थावर और जंगम सब लोक के मालिक बनते हैं वे आज कल्याण के लिए किए हुए और नहीं किए हुए पाप से पार करें।

१५- ओं भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्। अग्निं मित्रं वरूणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये।।

अर्थः हे ईश्वर ! पाप के हटाने वाले जिसका बुलाना अच्छा हो ऐसे शक्तिशाली विद्वान् को संग्रामों में अपनी रक्षा के लिए बुलाएँ और श्रेष्ठ कर्म वाले आस्तिक पुरुष को बुलाएँ और अन्नादि लाभ के लिए, अनुपद्रव के लिए – अग्निविद्या को, प्राणविद्या को, सेवनीय जलविद्या को और अंतरिक्ष और पृथ्वी की विद्या को,

14
यज्ञ करने की विधि

यज्ञ को अग्निहोत्र और हवन भी कहते हैं। ऋषियों ने प्रत्येक मानव के लिए पंचयज्ञों का विधान किया है। हवन का अर्थ दान है। जिस कर्म से परमात्मा की आज्ञा पालने के लिए भौतिक अग्नि में सुगन्धित पदार्थों का दान किया जाता है। वह अग्निहोत्र कहलाता है। जिन मन्त्रों से अग्निहोत्र करते हैं – वह हवनमन्त्र कहलाते हैं। हवन करने से मानव को बुद्धि–बल–स्वास्थ्य और ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

विधि - यज्ञ करने का स्थान स्वच्छ, प्रकाश और वायुयुक्त होना चहिए । वहां किसी प्रकार के कीड़े व चीटीं न होवें। यज्ञकुण्ड भी साफ, स्वच्छ व सुन्दर होवें। पात्र, आसन, समिधाएं व अन्य उपयोगी वस्तुएं पवित्र होवें। यज्ञ वेदी पर प्रत्येक वस्तु व्यवस्थित स्थान पर रखी हो। आचमन-पात्रों में जल पहले से ही भरा हुआ हो। यज्ञकुण्ड में छोटी-छोटी समिधाएं अच्छी प्रकार जमा लेवें। धूप, अगरबत्ती को पहले जलाकर रख दें। घृत और सामग्री पात्रों में पहले से ही रखी हो। यह कार्य यज्ञ वेदी पर व्यवस्था के अन्तर्गत आता है। ब्रह्मा, पुरोहित और यजमानों के आसन यथास्थान पर सुन्दरता से व्यवस्थित हो। यज्ञ वेदी का वातावरण व यज्ञ करने कराने वाले सभी शान्त, व मौन हों।

तत्पश्चात यज्ञ-विधान आरम्भ करें। सबसे पहले आठ प्रार्थना-मन्त्रों का एकाग्रचित होकर उच्चारण करें। जिन्हें मन्त्र पाठ नहीं आता है वे पुस्तक की सहायता से बोलें। जो नहीं बोल सकते वे

शान्त होकर सुनें। उच्चारण करते समय यदि इन मन्त्रों के अर्थों पर भी विचार व मनन करते जायें, तो अधिक आनन्द आयेगा। उस प्रभु के गुणों का ही इन मन्त्रों में विवेचन है।

इसके पश्चात् स्वस्तिवाचन के मन्त्रों का पाठ करें। शान्तिपूर्वक शुद्ध उच्चारण करने से मन्त्रों की विचार-शक्ति से बल मिलता है। इन मन्त्रों में परमात्मा से स्वस्ति की कामना की गई है। परमात्मा आप मंगलमय हैं। सारे संसार की व्यवस्था आपके हाथों में है। आप हमारा सभी प्रकार से कल्याण करें। हमारे जीवनपथ-सुखदायक बने। हम सदैव श्रेष्ठ कार्य करते हुए दीर्घ जीवी बनें। सारा संसार हमारा मित्र बन जाये। संसार के किसी भी प्राणी को दुःख या रोग न होवें। ऐसे श्रेष्ठ विचार इन सभी मन्त्रों में हैं। इनका मन में ध्यान करते हुए मन्त्र बोलें और सुनें।

स्वस्तिवाचन के मन्त्रों के पश्चात् शान्तिप्रकरण के मन्त्रों का उच्चारण करें। इन मन्त्रों के भाव जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनमें प्रार्थना की गई है कि परमात्मा हमें चारों ओर से शान्ति प्रदान कीजिए। सूर्य, चन्द्र, तारे, पृथ्वी, आकाश, वनस्पतियां आदि हमारे जीवन के लिए शांतिदायक होवें। अग्नि, जल, वायु, तेज आदि हमारे लिए सब प्रकार से मंगलदायक होवें।

स्वस्तिवाचन और शांतिप्रकरण के मन्त्र विशिष्ट यज्ञ में बोले जाते हैं। दैनिक यज्ञ में प्रायः समय की कमी के कारण नहीं बोलते हैं। अतः जैसा अवसर होवे, वैसे ही मन्त्रोच्चारण कर लेना चाहिए। इसके बाद यज्ञ की क्रिया आरम्भ होती है। सबसे पहले यज्ञ पर बैठे हुए सब लोग आचमन करें। दांए हाथ की हथेली पर जल लेकर तीन बार आचमन करें।

अंग स्पर्श - बाएं हाथ की हथेली में जल लेकर दाएं हाथ की

प्राप्त कराइए।

१०- ओं नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः। ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये।।

अर्थः कर्मकारी मनुष्यों के द्रष्टा आलस्यरहित लोगों के पूजनीय विद्वान् लोग जो कि बड़े अमरण धर्म को प्राप्त हो चुके हैं अर्थात् जीवनमु क्त हैं और सुंदर प्रकाशमय रथों से युक्त हैं तथा जिनकी बुद्धि को कोई दबा नहीं सकता, ऐसे पापरहित वे आदित्य ब्रह्मचारी जो कि अंतरिक्ष लोक के ऊँचे देश को ज्ञानादि द्वारा व्याप्त करते हैं, हमारे कल्याण के लिए हों।

११- ओं सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्। ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये।।

अर्थः अपने तेजों से अच्छे प्रकार विराजमान ज्ञान आदि से वृद्ध जो विद्वान् लोग यज्ञ को प्राप्त होते हैं और जो किसी से भी अपीड़ित देवता लोग द्युलोकवर्ती बड़े-बड़े स्थानों में निवास करते हैं उन श्रेष्ठ आदित्य ब्रह्मचारियों को और अखंडनीय आत्मविद्या को हव्यान्न के साथ और अच्छी स्तुतियों के साथ कल्याण के लिए सेवन कराइए।

१२- ओं को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन। को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये।।

अर्थः यह ईश्वर का उपदेश है – हे समस्त विद्वानो! जिस स्तुति समूह का तुम सेवन करते हो, उस सामवेदोक्त समूह को तुम

मार्ग में हमारे लिए कल्याण हो। और प्राण और उदान वायु हमारे लिए कल्याणकारी हों।

७- ओं स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव। पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि।। ऋ० १।५१।११–१५।।

अर्थः हे ईश्वर, मार्ग में आनंद से हम लोग विचरें। जैसे सूर्य और चंद्र बिना किसी उपद्रव के विचरण करते हैं, फिर सहायता देने वाले किसी को दुःख न देने वाले ज्ञानसंपन्न समझदार बंधु आदि के साथ हम मेल करें।

८- ओं ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः। ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।

ऋ० ७।३५।१५।।

अर्थः जो यज्ञ के योग्य विद्वानों के बीच में यज्ञोपयोगी है और मननशील पुरुषों के साथ संगति करने वाले जीवन्मुक्त जैसे सत्यज्ञानी हैं वे आप लोग आज यज्ञ के दिन बहुत कीर्ति वाले विद्याबोध को हमारे लिए दें और तुम सब कल्याणकारी पदार्थों से सब काल में हमारी रक्षा किया करो।

६- ओं येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः। उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये।।

अर्थः जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिए सबकी निर्माण करने वाली पृथ्वी माधुर्ययुक्त दुग्धादि पदार्थों को देती है और अखंडनीय मेघों से बढ़ा हुआ अंतरिक्षलोक सुंदर जल आदि को देता है, अत्यंत बल वाले यज्ञ द्वारा वृष्टि का आहरण करने वाले, शोभन कर्म वाले उन आदित्य ब्रह्मचारियों को उपद्रव न होने के लिए

मध्यमा और अनामिका अंगुलियों को मिलाकर जल स्पर्श करके प्रथम दाएं फिर बाएं अंगों का मन्त्र पढ़कर स्पर्श करें।

अग्न्याधान - अग्नि को स्थापित करना। ओ३म् भूर्भुवः स्वः इस मन्त्र का उच्चारण करके, घृत का दीपक जलाकर, कपूर में अग्नि लगाकर, किसी पात्र में रखकर, साथ में छोटी–छोटी लकड़ियों के साथ यज्ञ कुण्ड में यजमान या पुरोहित अग्नि स्थापित करें। अग्नि शीघ्र प्रदीप्त हो जाय इसके लिए छोटी समिधाएं और घी यज्ञ में डालें।

समिधाधान - जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे, तब तीन समिधाएं आठ–आठ अंगुल को घृत में डुबाकर, उनमें से एक-एक निकाल कर, तीन बार मन्त्रों से अग्नि में चढ़ाएं।

घृताहुति - ओ३म् अयंत....... इस मन्त्र को पांच बार पढ़कर आहुति देवें।

जल प्रसेचन - अंजलि में जल लेकर मन्त्रों के द्वारा वेदी के चारों ओर क्रम से 'पूर्व', 'पश्चिम', 'उत्तर', तथा 'दक्षिण' सब ओर जल छिड़कें।

आघारावाज्याहुति मंत्र - इन मन्त्रों से घृताहुति देवें। पहले से उत्तर और दूसरे से दक्षिण में एक-एक आहुति दें।

आज्य भागाहुति - इन मन्त्रों से यजमान कुण्ड के मध्य में दो घी की आहुतियाँ देवें।

प्रातःकाल की आहुतियाँ - प्रातः काल की आहुतियों के मन्त्रों से यजमान तथा होता घी और सामग्री की आहुति देवें। सायंकाल के मन्त्रों की आहुतियाँ पृथक से हैं। यदि प्रातः काल ही यज्ञ करना हो तो सायंकाल के मन्त्रों की आहुतियाँ भी

प्रातःकाल के यज्ञ में ही दे देनी चाहिए।

पूर्णाहुति – सबके पश्चात् तीन बार मन्त्र पढ़कर पूर्णाहुति देवें। पात्रों में शेष सामग्री और घी उसके पश्चात् यज्ञकुण्ड में डाल देवें।

प्रार्थना और भजन - यज्ञ के पात्र व अन्य सामान वेदी से पृथक व्यवस्थित करके शांत एकाग्रचित होकर पुरोहित जी प्रार्थना करावें। प्रार्थना से उस प्रभु की लीला, व्यवस्था, न्याय, कृपा आदि का ही वर्णन हो, जिस भाव या कार्य के लिए यज्ञ किया जा रहा हो उसकी सफलता के लिए भी प्रार्थना से प्रभु से सद्बुद्धि की याचना कर लेनी चाहिए।

तत्पश्चात् सब लोग यज्ञरूप प्रभो ..... प्रसिद्ध यज्ञ-प्रार्थना मिलकर, प्रेम से, तन्मय होकर बोलें, इस प्रार्थना में सारे यज्ञ का सार भरा हुआ है। सारे मन्त्रों का इसमें निचोड़ है इस प्रार्थना में रस है। इसको बोलकर प्रसन्नता और आनन्द मिलता है। यज्ञ प्रार्थना के बाद प्रभु भक्ति का कोई सुन्दर भजन बोलें, इससे वातावरण में भक्ति की तरंगे उत्पन्न होगी।

इन सबके पश्चात् शान्ति पाठ करके यज्ञ कर्म समाप्त करें।

यज्ञ के लाभ

ऋषि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' के तृतीय समुल्लास में लिखा है –

प्रश्न - होम में क्या उपकार होता है ?

उत्तर - हम लोग जानते हैं, कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धित वायु और जल से

अंतरिक्ष और पृथ्वी अच्छे विज्ञान से युक्त हुए हमारे लिए कल्याणकारी हों।

४- ओं स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः।।

अर्थः हे परमेश्वर ! शांति के लिए हम वायु विद्या को कहें व उपदेश करें और शांत्यादि ऐश्वर्य देने वाले चंद्रमा की भी हम स्तुति करते हैं, जो चंद्रमा ओषध्यादि-रस का उत्पादक होने से संसार की रक्षा करने वाला है। बड़े कर्मों के रक्षक संपूर्ण समूह वाले आपका हम कल्याण के लिए आश्रय लेते हैं। अड़तालीस वर्ष पर्यंत ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले ब्रह्मचारी, आपकी कृपा से हम लोगों के बीच उत्पन्न हों।

५- ओं विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः।।

अर्थः हे परमात्मन् ! आज यज्ञ के दिन हमारे आनंद के लिए सब विद्वान् लोग हों और सब मनुष्यों के काम में आने वाला और सर्वत्र बसने वाला अग्नि मंगल के लिए हो। विशिष्ट मेधावी विद्वान् लोग हमारी रक्षा करें और हमारे कल्याण के लिए ही दुष्टों को रुलाने वाले आप पापरूप अपराध से शांतिपूर्वक हमारी रक्षा करो।

६- ओं स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति। स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि।।

अर्थः- हे अखंडितविद्य ! परमेश्वर ! हमारे लिए कल्याण करो और वायु तथा विद्युत् हमारे लिए कल्याण करें, शुभ धनादि संपन्न

15

अथ स्वस्तिवाचनम्

१- ओ३म् अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।।

ऋ०१।१।१

अर्थः पूर्व से ही जगत् को धारण करने वाले हवन, विद्या आदि दान और शिल्प-क्रिया के प्रकाशक प्रत्येक ऋतु में पूजनीय जगत् के सुंदर पदार्थों को देने वाले रमणीय रत्नादिकों, पोषण करने वाले प्रकाशस्वरूप परमात्मा की मैं (उपासक) स्तुति करता हूँ।

२- ओं स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये।। ऋ० ।१।१।६।।

अर्थः हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! लोकवेद प्रसिद्ध आप पुत्र के लिए पिता-जैसे, हमारे लिए सुख के हेतु पदार्थों की प्राप्ति करने वाले होइए। और हम लोगों का कल्याण के लिए आपस में मेल कराइए।

३- ओं स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः। स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना।।

अर्थः हे ईश्वर ! अध्यापक और उपदेशक हमारे लिए कल्याण करें। ऐश्वर्यरूप आप व वायु सुख का संपादन करें। अखंडित प्रकाश वाली विद्युत् विद्या ऐश्वर्यरहित हम लोगों के लिए कल्याण करे। पुष्टिकारक प्राणों का देने वाला मेघादि कल्याण को दें।

आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुःख प्राप्त होता है।

प्रश्न – चन्दनादि घिसकर किसी के लगावें या घृतादि खाने को देवें, तो बड़ा उपकार हो। अग्नि में डालकर व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानों का काम नहीं।

उत्तर - जो तुम पदार्थ विद्या जानते, तो कभी ऐसी बात नहीं कहते क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता है। जहाँ-जहाँ होम होता है, वहाँ से दूर देश में स्थित पुरुष के नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है। वैसे दुर्गन्ध का भी। इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होकर वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध निवृति करता है।

प्रश्न - तो मन्त्र पढ़कर होम करने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर - मन्त्रों में यह व्याख्यान है, कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जाय और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें। वेद पुस्तकों का पठन-पाठन और रक्षा भी होवें।

प्रश्न - क्या इस 'होम' करने के बिना पाप होता है ?

उत्तर - हां ! क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर में जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होकर वायु को और जल को बिगाड़ कर रोग उत्पन्न करके दूसरे प्राणियों को दुख प्राप्त होता है, उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है इसलिए उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध या उससे अधिक वायु या जल में फैलाना चाहिए। खिलाना-पिलाने से उसी एक व्यक्ति को सुख मिलेगा। जितना घृत और सुगन्ध-पदार्थ एक-एक व्यक्ति खाता है, उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है। जब तक यह 'होम' करने का प्रचार रहा, तब तक आर्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से

पूरित था। अब भी प्रचार हो, तो वैसा हो जाये।

यजुर्वेद में एक प्रश्न आता है कि बताओ इस सारे संसार का आधार क्या है ? तब मन्त्र में ही उत्तर दिया गया है कि इस सारे ससांर का आधार 'यज्ञ' है। इसी यज्ञ पर सारा संसार टिका हुआ है। परमात्मा निरन्तर सृष्टि कल्याण के लिए यज्ञ कर रहा है। यदि एक पल के लिए वायु रुक जाए तो सभी का जीवन समाप्त हो जायेगा ? वह प्रभु यज्ञ रूप है। इसलिए सृष्टि में निरन्तर यज्ञ चल रहा है। अपने आप ऋतुएं बदलती हैं, वनस्पतियां, औषधियां फल-फूल हर वस्तु परमात्मा के यज्ञ से मानव को स्वाभाविक मिल रही हैं। अग्नि, वायु, जल, तेज ये सब प्रभु कुपा से ही मानव मात्र को मिल रहे हैं।

इसलिए परमात्मा मानव को प्ररणा दे रहा है कि हे मानव तू भी सृष्टि के कल्याण के लिए जो तेरे पास है उससे यज्ञ कर। यदि यज्ञ के लिए घृत, सामग्री, द्रव्य नहीं है तो चिन्ता मत कर। अपने शरीर से ही यज्ञ कर। शरीर से तू दूसरों की सेवा कर सकता है। हाथों से दूसरों की सहायता कर सकता है। आंख, कान, मुख, इन इन्द्रियों से श्रेष्ठ कार्य करना भी तो यज्ञ है।

इस प्रकार सृष्टि का आधार यज्ञ है। बिना यज्ञ के सृष्टि एक पल भी नहीं चल सकती है। हमें जो जीवन निर्वाह के लिए वस्तुएं प्राप्त होती हैं, दूसरे व्यक्ति यज्ञ कर रहे हैं। वे त्याग करके निर्माण कर रहे हैं, तभी हम वस्तुएं प्राप्त कर सकते हैं। जहां यज्ञ है वहां जीवन है। जिस परिवार में लोग एक दूसरे के दुःख-सुख में एक दूसरे का ध्यान रखते हैं, वह परिवार सुखी हैं। वहां यज्ञ हो रहा है। यज्ञ त्याग भावना बताता है। जो वस्तु अग्नि में डालते है। वह कई गुना होकर सब प्राणियों में बंट जाती है।

यदि आप दूसरों को शुद्ध, वायु और जल देते हैं, इससे दूसरों को जीवन मिल रहा है। वायु ही हमारा जीवन है। वायु के बिना हम एक पल भी जीवित नहीं रह सकते हैं। यदि अग्नि में आप एक लाल मिर्च डाल दें तो देखेंगे सारा घर छींकते-छींकते परेशान हो जाएगा। यदि उसी आग में घी, चीनी, मेवे डालें तो देखेंगे चारों ओर सुगन्ध फैल जाएगी। जरा-सी वस्तु ने कितने सारे लोगों को प्रभावित किया है।

यज्ञ बड़ा ही वैज्ञानिक है। इसकी उपयोगिता, व्यावहारिकता आज सारा संसार स्वीकार करने लगा है। अनेक प्रकार के रोग जो किसी दवाई से ठीक नहीं हो सकते हैं, उन्हें यज्ञ के माध्यम से दूर किया जा सकता है। संक्षेप में यज्ञ ही जीवन है। यज्ञ करना और कराना प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य एवं धर्म है।

यज्ञ के द्वारा ही हम परमगति को प्राप्त कर सकते हैं। यज्ञ दुखों से छुटने का श्रेष्ठतम साधन है। दूसरों का उपकार करने के लिए यज्ञ उत्तम मार्ग है। यज्ञ में दान, पूजा और संगतिकरण तीनों का सुन्दर योग है। यज्ञ को सृष्टि का श्रेष्ठतम कर्म बताया गया है। जहां नित्य यज्ञ होता है, वहां बल-बुद्धि और आरोग्य रहता है। यज्ञ ही जीवन है। जिसने अपना जीवन यज्ञमय बनाया, वहीं संसार में अमर हो गया ।

— डा. महेश वेदालंकार